प्रवचन-क्रम

1. एक नया द्वार..2
2. स्वयं को जानना सरलता है..13
3. असंग की खोज..26
4. प्रभु तो द्वार पर ही खड़ा है..40

पहला प्रवचन

एक नया द्वार

मेरे प्रिय आत्मन्!

मनुष्य का जीवन रोज-रोज ज्यादा से ज्यादा अशांत होता चला जाता है और इस अशांति को दूर करने के जितने उपाय किए जाते हैं उनसे अशांति घटती हुई मालूम नहीं पड़ती और बढ़ती हुई मालूम पड़ती है। और जिन्हें हम मनुष्य के जीवन में शांति लाने वाले वैद्य समझते हैं वे बीमारियों से भी ज्यादा खतरनाक सिद्ध होते चले जाते हैं। ऐसा बहुत बार होता है कि रोग से भी ज्यादा औषधि खतरनाक सिद्ध होती है। अगर कोई निदान न हो, अगर कोई ठीक डाइग्नोसिस न हो, अगर ठीक से न पहचाना गया हो कि बीमारी क्या है, तो इलाज बीमारी से भी ज्यादा खतरनाक सिद्ध हो तो आश्चर्य नहीं है।

मनुष्य के जीवन में अशांति का मूल कारण क्या है? दुख, पीड़ा क्या है? मनुष्य के तनाव और टेंशन के पीछे कौन सी वजह है उसका ठीक-ठीक पता न हो तो हम जो भी करते हैं वह और भी कठिनाइयों में डालता चला जाता है।

एक छोटी सी कहानी से मैं अपनी बात शुरू करूं, जिससे मैं कह सकूं कि मनुष्य के जीवन की मूल परेशानी क्या है। और जब तक हम उसे दूर नहीं करते, तो चाहे पूरब की संस्कृतियां हों, चाहे पश्चिम की; चाहे धार्मिक कहे जाने वाले लोग हों और चाहे भौतिक कहे जाने वाले लोग हों, कोई अंतर नहीं पड़ता, आदमी अशांत ही होता चला जाता है।

एक सम्राट के द्वार पर बहुत भीड़ लगी हुई थी और भीड़ बढ़ती ही चली जा रही थी। सुबह से लोग आने शुरू हुए थे और अब सांझ होने के करीब थी, करीब-करीब पूरी राजधानी द्वार पर इकट्ठी हो गई थी। कुछ ऐसी घटना वहां घट गई थी कि जो भी आकर खड़ा हो गया था उसने लौटने का नाम नहीं लिया। सारे नगर में खबर फैल गई थी। हर आदमी राजमहल की तरफ ही भागा चला जा रहा था। और घटना बहुत छोटी थी, किसी की कल्पना में भी नहीं हो सकती थी कि इतनी बड़ी बन जाएगी।

सुबह ही सुबह एक भिखारी ने भीख मांगी थी सम्राट के द्वार पर। सम्राट अपने राजमहल की सीढ़ियों पर खड़ा था। उस भिखारी ने कहा था, क्या आप मेरे भिक्षापात्र को भर देंगे? सम्राट ने कहा कि निश्चित ही। लेकिन उस भिखारी ने कहाः इसके पहले कि मेरा भिक्षापात्र भरा जाए, मेरी शर्त आपको पता है? मैं बिना शर्त भिक्षा नहीं लेता हूं। सम्राट बहुत हंसा और उसने कहा कि यह पहला मौका है कि कोई भिखारी और शर्त के सहित भिक्षा मांगता हो, क्या है शर्त तुम्हारी? उस भिखारी ने कहाः शर्त तो ऐसे छोटी है, आप सम्राटों के लिए बहुत कठिन नहीं, लेकिन मैं कह दूं, मेरा भिक्षापात्र पूरा भर सकते हों तो ही मुझे भिक्षा दें अन्यथा मैं किसी और द्वार पर मांगूंगा। सम्राट और भी हंसने लगा और उसने कहाः पागल मालूम होते हो। इतना छोटा सा भिक्षापात्र लिए हो, हम उसे भी न भर सकेंगे ऐसा संदेह का कारण क्या है? फिर सम्राट ने मजाक में ही अपने वजीर को कहा कि अब धन से भर दो इसके भिक्षापात्र को; अन्न से नहीं, स्वर्णमुद्राओं से भर दो ताकि यह भिखारी अपनी आगे के लिए शर्त भूल जाए और समझ ले कि सम्राटों के द्वार पर भिक्षा कैसे मांगी जाती है। उस भिखारी ने फिर कहा कि ध्यान रहे, मेरी शर्त खयाल है न, पात्र पूरा भर देंगे, अधूरा तो नहीं लौटना पड़ेगा? क्योंकि अधूरा पात्र लिए मैं कभी लौटता नहीं हूं।

सम्राट के वजीर स्वर्ण-अशर्फियां ले आए, उस भिक्षु के पात्र में उन्होंने डाला, और डालते ही सम्राट को अपनी भूल पता चल गई। वे अशर्फियां उस पात्र में गिरते ही खो गईं जैसे गिरी ही न हों, पात्र खाली का खाली। और तब समझ में आया कि शर्त बहुत महंगी पड़ गई है। लेकिन सम्राट बड़े सम्राटों से नहीं हारा था, इस भिखारी से हार जाएगा इसकी भी उसकी तैयारी न थी। उसने अपने वजीरों को कहा कि चाहे मेरे सारे खजाने खाली हो जाएं लेकिन यह पात्र भरना ही है। फिर एक दौड़ शुरू हुई, खजानों से धन का आना और उस भिक्षु के पात्र में डाला जाना और उन सबका खो जाना और पात्र खाली का खाली! इसलिए वह भीड़ इकट्ठी हो गई थी। सांझ होते-होते राजा के खजाने खाली होने लगे लेकिन पात्र के भरने का कोई भी आसार दिखाई नहीं दिया।

फिर राजा थक गया, हार गया, उस भिखारी के पैरों पर गिर पड़ा और उससे पूछने लगा, जाने के पहले--मैं तो हार गया, मैंने स्वीकार कर लिया कि तुम्हारे पात्र को पूरा नहीं भर सकूंगा, और भूल हो गई मुझसे, लेकिन जाने के पहले इतना बता जाओ, यह पात्र किस जादू से निर्मित है? किन मंत्रों से सिद्ध किया है? यह पात्र भरता क्यों नहीं? वह भिखारी कहने लगाः न कोई मंत्र, न कोई जादू। एक बहुत छोटा सा राज है इस पात्र का। इस पात्र को मैंने आदमी के हृदय से बनाया है। न आदमी का हृदय कभी भरता है, न यह पात्र कभी भरता है।

मुझे पता नही कि यह कहानी कहां तक सच है। यह भी पता नहीं कि आदमी के हृदय से कोई पात्र बन सकता है या नहीं बन सकता है। लेकिन उसे जानने की जरूरत भी नहीं है। एक बात निश्चित है कि आदमी का हृदय कभी भरता नहीं। चाहे कितने ही खजाने मिल जाएं, चाहे कितना ही धन, चाहे कितना ही यश, जो भी मिल सकता है मिल जाए और आदमी के हृदय का पात्र खाली का खाली रह जाता है। और आदमी के हृदय की भी एक ही शर्त है कि मुझे भर दो। मुझे नहीं भरोगे तब तक मैं शांत नहीं हो सकता हूं। आदमी का हृदय कहता है मुझे भर दो तो ही मैं शांत हो सकता हूं, तो ही मैं सुखी हो सकता हूं। और आदमी का हृदय कभी भरता नहीं। और इन दोनों के बीच में जो तनाव है वह अशांति बन जाती है।

महत्वाकांक्षा, एंबीशन के अतिरिक्त और कोई अशांति नहीं है। महत्वाकांक्षा किसी भी तरह की हो सकती है। एक आदमी बहुत बड़ा महल खड़ा करना चाहे तो भी महत्वाकांक्षा है और एक आदमी स्वर्ग में प्रवेश करना चाहे तो भी महत्वाकांक्षा है। और एक आदमी धन के अंबार लगाना चाहे और पृथ्वी पर सबसे बड़ा धनपति बन जाना चाहे तो भी महत्वाकांक्षा है, तो भी एंबीशन है। और एक आदमी नग्न खड़ा होकर सबसे बड़ा तपस्वी बन जाना चाहे तो भी एंबीशन है, तो भी महत्वाकांक्षा है।

आदमी जब तक कुछ भी बनने के लिए आतुर है तब तक उसके प्राणों में महत्वाकांक्षा की आग जलती है। अगर कोई आदमी धार्मिक बनने के लिए भी दीवाना हो जाए, घर-द्वार छोड़ कर संन्यासी हो जाए, तो भी पीछे जो आग जल रही है वह महत्वाकांक्षा की आग है।

कोई आदमी छोटे क्लर्क से बड़ा क्लर्क बनना चाहता है, कोई आदमी मजदूर से अमीर बनना चाहता है, कोई भिखारी से सम्राट बनना चाहता है, कोई पापी से पुण्यात्मा बनना चाहता है, कोई असाधु से साधु बनना चाहता है, लेकिन जब तक कोई आदमी कुछ बनने की पागल दौड़ में है तब तक शांत नहीं हो सकता, तब तक अशांति उसके जीवन में रहेगी। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह क्या बनना चाहता है। बनना चाहने की दौड़ ही अशांति का आधारमूल है। और सारी मनुष्य-जाति अशांत है। इससे प्रतीत होता है कि सारी मनुष्य-जाति महत्वाकांक्षा के ज्वर से पीड़ित और परेशान है। यह मत सोच लेना आप कि राजनीतिज्ञ परेशान हैं सिर्फ, संन्यासी भी परेशान हैं। और यह मत सोच लेना आप कि पश्चिम के लोग परेशान हैं, पूरब के लोग भी परेशान

हैं। और यह भी मत सोच लेना कि धनी परेशान हैं, दरिद्र भी परेशान हैं। एक-एक आदमी परेशान है। जब सारी मनुष्यता इतनी परेशान हो तो बीमारी कहीं जड़ से हमें पकड़ती होगी। छोटे बच्चे पैदा हुए और महत्वाकांक्षा पकड़नी शुरू हो जाती है। हमारे शिक्षालय, स्कूल, विद्यापीठ, विश्वविद्यालय सभी महत्वाकांक्षा की दीक्षा देते हैं। वे सब ट्रेनिंग सेंटर्स हैं, जहां एंबीशन सिखाई जाती है, महत्वाकांक्षा सिखाई जाती है।

पहले दिन बच्चा स्कूल में गया और हम सिखाते हैं कि प्रथम आने की कोशिश शुरू करो, पीछे मत रह जाना, सबसे आगे खड़ा होना जरूरी है, और दौड़ शुरू हुई। बच्चे के झूले से जो दौड़ शुरू होती है वह कब्रिस्तान तक चलती है। सारा जीवन अशांति की एक लंबी यात्रा हो जाता है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि दौड़ किस दिशा में चलती है, लेकिन दौड़ चलती रहती है।

जो लोग इस दौड़ के प्रति सजग हो जाते हैं, और जो लोग अपने भीतर से इस दौड़ की व्यर्थता को समझ लेते हैं, और जो लोग इस दौड़ की व्यर्थता के प्रति जागरूक हो जाते हैं, अवेयर हो जाते हैं, वे लोग तत्क्षण शांत हो जाते हैं, उन्हें शांत होने के लिए और कुछ भी नहीं करना पड़ता है। ऐसा भी नहीं है कि शांत हो जाने पर वे जिंदगी से पहाड़ों पर भाग जाएंगे, ऐसा भी नहीं है कि दफ्तरों में काम नहीं करेंगे, ऐसा भी नहीं है कि खाना नहीं बनाएंगे, बुहारी नहीं लगाएंगे, कपड़े भी नहीं बनाएंगे, ऐसा भी नहीं है कि जिंदगी का सारा काम छोड़ देंगे। नहीं, बल्कि मेरी दृष्टि यह है कि जैसे ही महत्वाकांक्षा की दौड़ छूट जाती है, प्रत्येक काम एक नया आनंद और नया अर्थ ले लेता है। तब भीतर दौड़ नहीं होती, बाहर श्रम होता है। तब भीतर तनाव नहीं होता, बाहर सृजन होता है। तब भीतर तो गहरी शांति छा जाती है और भीतर जितनी गहरी शांति होती है आदमी उतनी ही तत्परता से बाहर सक्रिय हो जाता है।

बैलगाड़ी को रास्ते से गुजरते देखा होगा, उसका चाक घूमता चला जाता है, लेकिन बीच में एक कील थिर खड़ी रहती है। वह कील नहीं चलती। वह कील चुपचाप खड़ी रहती है, वह चलती ही नहीं। उस खड़ी हुई कील पर चाक घूमता चला जाता है। कील बिल्कुल खड़ी रहती है और चाक घूमता है। खड़ी हुई कील पर घूमते हुए चाक का आधार है। अगर कील भी घूमने लगे तो फिर बैलगाड़ी आगे नहीं बढ़ सकती, गिरेगी और नष्ट हो जाएगी। आदमी का चित्त न घूमे, आदमी का व्यक्तित्व घूमे। आदमी का व्यक्तित्व एक चाक बन जाए, गतिमान हो, लेकिन आदमी का चित्त एक कील हो--थिर, शांत, मौन, वहां कोई दौड़ नहीं। और जब आदमी का चित्त भी दौड़ने लगता है और व्यक्तित्व भी दौड़ता है, तो दुर्घटना शुरू हो जाती है, जीवन अशांत हो जाता है।

लेकिन आमतौर से लोग सोचते हैं कि चित्त अगर नहीं दौड़ेगा, तो फिर, फिर तो सब ठहर जाएगा। वे यही कह रहे हैं कि अगर कील नहीं घूमेगी तो फिर चाक ठहर जाएगा। नहीं, कील के घूमने से चाक नहीं ठहरता। कील के घूमने से ही चाक के गिर जाने की संभावना है। कील खड़ी रहे तो ही चाक घूमेगा और ठीक से घूमेगा। लेकिन अब तक जिस सूत्र पर हमने मनुष्य का निर्माण करने की कोशिश की है वह यह है कि चित्त को दौड़ाओ, उसकी आत्मा को व्यथित और परेशान करो, उसकी आत्मा में जहर डाल दो पागलपन का कि वह पागल हो जाए, कि मैं कुछ हो जाऊं, कुछ हो जाऊं, और इसी बुखार के आधार पर आदमी से काम लो। यह काम स्वस्थ नहीं है। हम जो भी काम कर रहे हैं, सारा काम अस्वस्थ है, ज्वरग्रस्थ है, फीवरिश है। क्योंकि भीतर प्राण पागल की तरह दौड़ रहे हैं। काम हम करने में उत्सुक नहीं हैं, हम आगे जाने में उत्सुक हैं। इसलिए कोई भी काम आनंद नहीं देता, कोई भी काम शांति नहीं देता, कोई भी काम जीवन की प्रफुल्लता नहीं बनता है, कोई भी काम संगीत नहीं बन पाता, कोई भी काम प्रार्थना नहीं बन पाता है। हर काम को हम सीढ़ी बनाते हैं कि आगे पहुंच जाएं। और आगे पहुंच कर भी कोई फर्क नहीं पड़ेगा, और आगे की सीढ़ियां दिखाई पड़ेंगी। और कहीं

भी पहुंच कर कोई फर्क नहीं पड़ेगा, जहां भी हम होंगे आगे की नजर होगी। और जहां हम होंगे इसलिए वहां हम अस्वस्थ, परेशान और पीड़ित होंगे, वहां से हट जाने के लिए आतुर होंगे, कहीं और पहुंचने के लिए उत्सुक होंगे। और जहां हम पहुंचने के लिए उत्सुक हैं वहां पहुंच कर भी फिर यही प्रक्रिया दोहरेगी। इसलिए आदमी कहीं भी पहुंच जाए, नहीं पहुंच पाता कहीं। कुछ भी पा ले, खाली रह जाता है। कुछ भी मिल जाए, ऐसा नहीं लगता कि मिल गया। जिंदगी भर एक अनफुलफिलमेंट, एक अपूर्णता, एक अपूर्ति, एक रिक्तता, एक एंप्टीनेस प्राणों को पकड़ते रहते हैं। महत्वाकांक्षा होती है जितनी चित्त में, मन उतना ही खाली रह जाता है। जितनी कम महत्वाकांक्षा होती है, मन उतना ही भर जाता है। जितना भरा हुआ मन होता है उतना ही जीवन आनंद होता है। जितना जीवन आनंद होता है उतना प्रत्येक काम एक नया ही अर्थ ले लेता है।

कबीर भी कपड़ा बुनता था। नहीं, शांत हो जाने से कपड़ा बुनना बंद नहीं हुआ। मन शांत हो जाने से कबीर की वह धुन्नकधुन समाप्त नहीं हुई। लोगों ने आकर कबीर को कहा भी कि बंद करो यह सब, अब किसलिए कपड़े बुनते हो? कबीर ने कहा कि पहले कपड़े बुनता था, ज्वरग्रस्त था, कपड़े बुनने से कोई मतलब न था, कुछ और पाना था, उसके लिए कपड़ा बुनता था। अब भी कपड़ा बुनता हूं, अब कुछ पाने के लिए नहीं, कुछ देना है इसलिए कपड़ा बुनता हूं। पहले कपड़ा बुनता था, जो पहनता था उससे मुझे कुछ चाहिए था। अब भी कपड़ा बुनता हूं, अब जो भी कपड़ा ले जाता है उसे एक सुंदर कपड़ा दे सकूं इसलिए कपड़ा बुनता हूं।

कपड़ा बुन कर कबीर बाजार में बेचने जाते थे। हजारों लोगों ने, लाखों लोगों ने बाजार में जाकर कपड़े बेचे हैं। हजारों जुलाहों ने कपड़े बुने हैं। लेकिन कबीर जैसा जुलाहा खोजना बहुत मुश्किल है। कबीर नाचते हुए जाते थे, एक कपड़ा बुन लाए थे। लोग पूछते कि इतने खुश किसलिए हो रहे हो? कबीर कहते कि इतने आनंद से बुना है यह कपड़ा, अब उस राम की तलाश में निकला हूं जो इसे पहनेगा।

गोरा कुम्हार, कुम्हार ही था, फिर मन शांत हो गया तो घड़े और बर्तन बनाने बंद नहीं कर दिए थे। फिर तो वह और भी सुंदर घड़े बनाने लगा। क्योंकि अब जिनके पास घड़े जाने थे वे परमात्मा हो गए थे। शांत चित्त को सारा जगत परमात्मा दिखाई पड़ने लगता है। फिर भी काम जारी रहेगा।

अभी भी मां घर में खाना बनाती है, अभी वह अपने बेटे के लिए खाना बनाती है। मन शांत हो जाए तो परमात्मा के लिए खाना बनाएगी। वह बेटा बदल जाएगा और परमात्मा सामने आ जाएगा। अभी भी एक आदमी द्वार पर बुहारी लगाता है, कल भी बुहारी लगा सकता है। एक अशांत आदमी बुहारी लगा रहा है, बुहारी लगाने से उसे कोई भी प्रयोजन नहीं है। एक शांत आदमी भी बुहारी लगाएगा, लेकिन बुहारी लगाना वही अर्थ ले लेगी जो किसी कवि को कविता का है, किसी संगीतज्ञ को संगीत का है, किसी प्रेमी को प्रेम का है।

व्यक्तित्व शांत होगा तो भी जगत सक्रिय होगा, लेकिन वह सक्रियता हिंसा नहीं रह जाएगी, वह सक्रियता प्रतिस्पर्धा नहीं रह जाएगी, वह सक्रियता महत्वाकांक्षा की पागल दौड़ नहीं रह जाएगी, शांत चित्त की क्रिएटिविटी होगी, शांत चित्त का सृजन होगा।

लेकिन अब तक हमने मनुष्य को ढाला है महत्वाकांक्षा के सूत्र में। और अब भी हम सजग नहीं हो गए हैं कि आने वाले बच्चों को महत्वाकांक्षा की दिशा में न ढालें। अब भी हम उन्हें उसी दिशा में ढाल रहे हैं। हर बाप अशांत है, हर शिक्षक अशांत है, हर मां अशांत है लेकिन फिर बच्चों को उसी ढांचे में ढाल रहे हैं जिस ढांचे में हम ढले हैं। बड़ी आश्चर्य की बात है। अगर हमारा पूरा समाज अशांत है तो आने वाले बच्चों के लिए हम कुछ व्यवस्था करें कि वे उसी ढांचे में न जाएं जिसमें हम गए थे। लेकिन हर बाप यह कोशिश करता है कि बेटा उस जैसा बन जाए जैसा वह है। मां यह कोशिश करती है कि उसका बेटा वैसा बन जाए जैसा वह है। और कोई मां,

कोई बाप, कोई शिक्षक यह नहीं पूछता कि हम क्या हैं? हम इतने अशांत और दुखी हैं, हम आने वाले बच्चों और आने वाली पीढ़ियों को भी इतना ही अशांत और दुखी छोड़ जाने को इतने आतुर क्यों हैं? हर पीढ़ी अपनी ही शक्ल में नई पीढ़ी को ढाल देती है और सोचती है बहुत बड़ा काम कर दिया है। और जो रोग जारी थे वे जारी रहते हैं। और कोई पीढ़ी तैयार नहीं होती कि रोग की बुनियादों को समझे।

महत्वाकांक्षा के आधार पर दुनिया हजारों वर्ष जी ली। कोई तीन हजार वर्ष का इतिहास ज्ञात है, तीन हजार वर्ष में पंद्रह हजार युद्ध हुए हैं जमीन पर। प्रतिदिन युद्ध चल रहा है, किसी न किसी कोने में आदमी की हत्या चल रही है। तीन हजार वर्षों में पंद्रह हजार युद्ध का मतलब क्या होता है? पांच युद्ध प्रतिवर्ष हो रहे हैं। एक-एक युद्ध में करोड़ों लोगों की हत्या हो रही है। पहले महायुद्ध में साढ़े तीन करोड़ लोगों की हत्या हुई। दूसरे महायुद्ध में साढ़े सात करोड़ लोगों की हत्या हुई। और अब तीसरे की तैयारी है जिसमें हम पूरी मनुष्यता को समाप्त करने का इंतजाम कर रहे हैं।

फिर भी कोई नहीं पूछता कि महत्वाकांक्षा की शिक्षा से इतने युद्ध आए, महत्वाकांक्षा की शिक्षा से सारी मनुष्य-जाति का जीवन एक पागलखाने में, एक मेडहाउस में बदल गया है। लेकिन नहीं, हम यह जरूर पूछेंगे कि अशांत हैं शांत कैसे हो जाएं? फिर कोई आदमी हमको आकर कहेगा कि माला फेरने से शांति हो जाती है। महत्वाकांक्षा की भीतर आग जल रही है, माला फेरने से क्या होगा? फिर एक आदमी कहेगा कि राम-राम जपने से शांति हो जाती है। भीतर महत्वाकांक्षा का जहर घूम रहा है नस में, मस्तिष्क में, प्राणों में, राम-राम जपने से क्या होगा? फिर न राम-राम जपने से कुछ होगा, न माला फेरने से कुछ होगा। फिर हम माला फेंक देंगे, और राम-नाम को भी फेंक देंगे और कहेंगे कुछ भी नहीं होता, सब बेकार है। या आप कहेंगे कि हमारे भाग्य में नहीं है, या कहेंगे कि हमारे पिछले जन्मों का कर्म ठीक नहीं है। लेकिन कोई भी यह न पूछेगा कि भीतर जो प्राणों को जलाने वाली आग है अशांति की उसे बुझाने का, उसे मिटाने का कोई उपाय किया है? उस आग को हम रोज नया फ्यूल, रोज नया ईंधन देते चले जाएंगे, रोज नई लकड़ियां उसमें लगाते चले जाएंगे। वहां आग को भड़काते रहेंगे एक हाथ से और दूसरे हाथ से यहां शांत होने के लिए मंदिरों की, योगियों की, महर्षियों की तलाश करते रहेंगे कि कोई ट्रांसेंडेंटल मेडिटेशन बता दे, कोई ध्यान बता दे, कोई तप बता दे, कोई महर्षि मिल जाए जिसके हम पैर पकड़ लें और आशीर्वाद दे दे, कोई ताबीज बता दे वह हम ताबीज बांध लें। सब करेंगे हम, लेकिन एक बुनियादी सवाल को नहीं पूछेंगे कि हम अशांत क्यों हैं? शांत होने की कोशिश करेंगे हम, लेकिन यह कभी न पूछेंगे कि हम अशांत क्यों हैं? और अगर हम यह पूछें कि हम अशांत क्यों हैं, तो मैं नहीं समझता कि ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जिसे अपनी अशांति का कारण दिखाई न पड़ जाए।

लेकिन उसे हम देखना भी नहीं चाहेंगे। क्योंकि उसे देखने का मतलब जिंदगी का रूपांतरण होगा। क्योंकि उसे देखने का मतलब एक ट्रांसफार्मेशन होगा। क्योंकि उसे देखने के बाद आप वही आदमी नहीं रह जाएंगे जो थे, एक नये आदमी को जन्म लेने की मजबूरी हो जाएगी। और कोई आदमी बदलना नहीं चाहता है, हर आदमी वही रहना चाहता है जो वह है। कोई आदमी बदलने को राजी नहीं है। और जो आदमी बदलने को राजी नहीं है वह आदमी न शांत हो सकता है, न आनंदित हो सकता है, न आलोक को उपलब्ध हो सकता है। बदलने की क्षमता ही सच कहा जाए तो आदमी होने की क्षमता है। कोई जानवर कभी नहीं बदलता। जानवर वैसा ही जीता है जैसे उसका बाप जीता है। उसका बाप भी वैसे जीता था, उसका बाप भी वैसे जीता था। अगर जाकर जानवरों से पूछा जाए तो वे कभी नहीं बदलते, वे हमेशा पुरानी परंपरा के अनुसार चलते हैं। कभी कोई

फर्क नहीं लाते। जानवर बड़े परंपरागत होते हैं, ट्रेडिशनल होते हैं। जो उनके बाप ने किया था वही वे करते हैं। और कभी कोई जानवर अपनी जिंदगी में कोई बदलाहट नहीं लाता।

रेवोल्यूशन, क्रांति सिर्फ आदमी का लक्षण है किसी पशु का नहीं। और जो आदमी अपनी जिंदगी में कोई क्रांति नहीं लाता उसे समझ लेना चाहिए, वह पशुओं के साथ खड़ा होता है मनुष्यों के साथ खड़ा नहीं होता। लेकिन हम सब देखते हैं चारों तरफ और फिर भी वही करने के लिए तैयार रहते हैं जो हम थे कल। नया होने की हमारी हिम्मत ही नहीं है। और इसलिए हम जिंदगी के असली कारणों को देखते भी नहीं। आंख बंद रखते हैं कि उनको न देखें। कौन करता है किसी को अशांत?

मुझे न मालूम कितने लोग मिलते हैं, जो पूछते हैं, हम शांत कैसे हो जाएं? मैं उनसे कहता हूं, यह मत पूछो, यह गलत सवाल है। शांत होने का सवाल ही मत पूछो, यह पूछो कि अशांत क्यों हो? अपनी अशांति को समझने की कोशिश करो और तुम पाओगे कि कोई अशांति नहीं टिक सकती। लेकिन अशांति हम नहीं समझना चाहते हैं, हम शांत होना चाहते हैं। अशांति को समझेंगे तो व्यक्तित्व को बदलना पड़ेगा, क्योंकि तब हमें पता चलेगा कि मैं अपने कारण अशांत हूं। मुझे कोई दुनिया में अशांत नहीं किए हुए है। और अगर यह मुझे पता चल जाए कि मैं अपने कारण अशांत हूं तो फिर किसको दोष दूंगा? भाग्य को, भगवान को, समाज को, जगत को, किसको दोष दूंगा? फिर दोषी मैं रह जाऊंगा। और दुनिया में कोई आदमी अपने को दोषी नहीं ठहराना चाहता, दूसरे को दोषी ठहरा कर मुक्त हो जाना चाहता है।

महत्वाकांक्षा मनुष्य के जीवन के दुखों का मूल आधार है। और जब तक कोई आदमी एंबीशस है, महत्वाकांक्षी है, तब तक उसे स्वीकार कर लेना चाहिए कि वह अशांत रहेगा। पश्चिम में क्यों योगियों का इतना समादर बढ़ रहा है? आप समझते हैं? पश्चिम में एंबीशन अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गई है। पश्चिम पागलपन की आखिरी सीमा पर पहुंच गया है।

इधर विवेकानंद को कोई नहीं पूछता, अमरीका में पूछताछ शुरू हो जाएगी। शायद हम सोचेंगे कि विवेकानंद बहुत प्रतिभाशाली हैं इसलिए अमरीका में पूछताछ होती है। विवेकानंद निश्चित ही प्रतिभाशाली हैं, लेकिन भारत में कोई क्यों नहीं पूछताछ करता था? अभी पागलपन उस जगह नहीं पहुंचा जहां इलाज करने वाले को खोजने की जरूरत हो। लेकिन पहुंच रहा है पागलपन, बढ़ता चला जा रहा है। पूरब से कोई भी चला जाता है और पश्चिम में आदमी पहुंच जाता है उसके पास कि हमें शांत होने का उपाय बताओ।

न्यूयार्क में तीस प्रतिशत लोग बिना दवा लिए रात को नहीं सो रहे हैं। तीस प्रतिशत छोटी संख्या नहीं है। तीस प्रतिशत आदमियों की नींद खो गई है। और न्यूयार्क के मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि इस सदी के पूरे होते-होते न्यूयार्क में कोई आदमी बिना दवा लिए, बिना ट्रेंक्लेलाइजर लिए नहीं सो सकेगा। तो फिर न्यूयार्क का आदमी पूछेगा कि मुझे नींद कैसे आए? वह पूछता फिरेगा कि मुझे नींद कैसे आए? और अगर कोई तरकीब बता देगा कि नींद इस तरह आती है।

आपको पता है, विवेकानंद ने जब पहली दफा पश्चिम में, अमरीका में ध्यान की बात की, तो अमरीका में ध्यान के लिए एक नया शब्द प्रचलित हो गया। चूंकि आप तो दवा के कारखानों से संबंधित हैं, आप शब्द को समझ सकेगें। न्यूयार्क में और अमरीका के बड़े नगरों में विवेकानंद की ध्यान की बात को सुन कर कई लोगों ने प्रयोग किया और उनको नींद आ गई। तो उन्होंने क्या कहा? उन्होंने कहाः यह तो बहुत अच्छी तरकीब है। यह नॉन-मेडिशनल ट्रैंक्वेलाइज्.ार है। दवा भी नहीं लेनी पड़ती और नींद भी आ जाती है। नॉन-मेडिशनल ट्रैंक्वेलाइजर है। लेकिन वह आदमी नहीं पूछेगा कि मुझे नींद क्यों नहीं आती है? वह कहेगा कि मुझे नींद लाने

की दवा चाहिए या कोई तरकीब चाहिए। वह यह नहीं पूछेगा कि मुझे नींद क्यों नहीं आती है? अगर दिन भर कोई आदमी चित्त को खींच कर रखेगा महत्वाकांक्षा के लिए तो चित्त के सारे के सारे स्नायु जकड़ जाएंगे, वे रात को भी ढीला होने से इनकार कर देगें, वे तने ही रह जाएंगे। फिर नशे की जरूरत पड़ेगी, दवाओं की जरूरत पड़ेगी। हम दवाएं खोजेंगे, नशे खोजेंगे, मेथड्स खोजेंगे, शांत होने के लिए ध्यान की तरकीब पूछेंगे, जप-तप, और न मालूम क्या-क्या पूछेंगे। लेकिन बुनियादी सवाल नहीं पूछेंगे कि आखिर मेरा मस्तिष्क इतना खिंचा हुआ क्यों है? कौन खींच रहा है इसे?

मेरे अतिरिक्त और कोई भी नहीं। लेकिन उस तरफ हमारा ध्यान नहीं है। मुल्क भर में मैं घूमता हूं, न मालूम कितने तरह के लोग मुझे रोज मिलते हैं। जो भी आदमी मिलता है वह पूछता है कि क्या करें, कोई शांति नहीं है। और ऐसा नहीं है कि गरीब पूछता हो तो समझ में आ जाता है; समझ में आता है कि तकलीफ है--मकान नहीं है, रोटी नहीं है, बच्चे बीमार हैं, लेकिन अमीर भी यही पूछता है। वह भी यही कहता है कि बहुत तकलीफ में हूं, बहुत परेशानी में हूं। तब खयाल आता है कि गरीबी-अमीरी से इस परेशानी का कोई संबंध नहीं है। आदमी की बनावट में कहीं कोई तत्व गड़बड़ हो गया है; वह गरीब के साथ भी वही है, अमीर के साथ भी वही है।

वह तत्व क्या है? उस तत्व को मैं एक ही शब्द में कहना चाहता हूंः वह तत्व एंबीशन है, वह महत्वाकांक्षा है। और अगर चाहते हैं कि जिंदगी में एक नया द्वार खुले और हम अनुभव कर सकें कि कितना आनंद है इस जगत में--चांद-तारों में, फूलों में, पौधों में, आकाश में, बादलों में, मनुष्यों में, जीवन के एक-एक पल में, श्वास लेने में भी कितना आनंद है। हम कहेंगे, श्वास लेने में आनंद, एक बोझ की तरह हम चल रहे हैं, श्वास लेना आनंद कहां है? करोड़ों लोग प्रतीक्षा कर रहे हैं कब मौत आ जाए, श्वास लेना आनंद कैसे हो सकता है? अभी मैं घंटे भर यहां बोलूंगा, तो घंटे भर में जमीन पर साठ लोग आत्महत्या कर लेंगे। हर मिनट एक आदमी आत्महत्या कर रहा है। करोड़ों लोग मरने को उत्सुक हैं। आप कहते हैं श्वास लेने में आनंद है, आप कहते हैं चांद-तारों में आनंद है। कहीं कोई आनंद नहीं दिखाई पड़ता। न चांद-तारों में, न लोगों की आंखों में, न बच्चों में, न मनुष्यों में, न स्त्रियों में, न पौधों में, कहीं कोई आनंद नहीं दिखाई पड़ता। क्योंकि आनंद जब भीतर ही न हो तो वह कहीं कैसे दिखाई पड़ सकता है। वह भीतर हो तो चारों तरफ दिखाई पड़ने लगता है। फिर धूप और अर्थ ले लेती है, छाया और अर्थ ले लेती है। एक-एक चीज और अर्थ ले लेती है। नये इशारे प्रकट होने शुरू हो जाते हैं। लेकिन जब भीतर कुछ हो तब। तब यह संभव है। हमारे भीतर के विचार ही फैल कर हमारा अनुभव बन जाते हैं।

अमरीका की एक युनिवर्सिटी कुछ प्रयोग कर रही है, विचारों के चित्र लेने का प्रयोग कर रही है। और वे सफल हुए कुछ प्रयोगों में, और हैरानी का अनुभव हुआ। एक आदमी को फूलों की बगिया में बिठाया गया है और उस आदमी से कहा गया है, जो भी उसे सोचना हो सोचे। और उसके सामने बहुत सेंसेटिव प्लेट, बहुत सेंसेटिव कैमरे की, संवेदनशील कैमरे की फिल्में लगाई गई हैं, जो उसके चित्त के विचारों को पकड़ने की कोशिश में हैं। चारों तरफ फूल हैं लेकिन उस कैमरे ने जो उसका विचार पकड़ा वह एक छुरी का है, एक छुरी। बहुत वैज्ञानिक जो प्रयोग कर रहे थे, बहुत हैरान हुए। उससे पूछाः बात क्या है? उसने कहा कि मैं तो किसी आदमी की हत्या करने का विचार कर रहा हूं। मेरे मन में तो छुरा है। चारों तरफ फूल थे, वे उसके मन में नहीं थे। उसके मन में छुरा था।

सामने की सेंसेटिव फोटो प्लेट उसके छुरे को पकड़ती है। उस आदमी को जिसके मन में छुरा था फूल दिखाई पड़ सकते हैं? जिसके मन में छुरा हो उसे फूल कैसे दिखाई पड़ सकते हैं? फूल देखने के लिए छुरे वाला मन नहीं चाहिए। जिस आदमी के भीतर चित्त अशांति के न मालूम कितने आयाम खोल रहा है उसे चारों तरफ की शांति का कोई अनुभव हो सकता है? उसे पता भी नहीं चल सकता कि कहीं शांति है। बाहर जगत में हमें वही दिखाई पड़ने लगता है जो हमारे भीतर है।

जगत हमारा प्रोजेक्शन है। वह हमारे ही भीतर का फैलाव है। हम वही देख लेते हैं जो हम हैं। ध्यान रहे, हम जो हैं हम वही देख लेते हैं। अगर एक चमार एक रास्ते के किनारे बैठ कर जूते सीता है तो सड़क पर चलते हुए लोगों के चेहरे वह कभी भी नहीं देखता है। उसे लोगों के जूते ही दिखाई पड़ते रहते हैं। वह दिन भर देखता रहता है कौन आदमी कैसे जूते पहने हुए है। चमार जूते को देख कर अंदाज लगा लेता है कि ऊपर किस तरह का आदमी होगा। आदमी को देख कर अंदाज लगाने की जरूरत नहीं पड़ती, नीचे का जूता बता देता है कि यह क्लर्क है कि मैनेजर है, गरीब है कि अमीर है, नेता है कि अनुयायी है, सब जूते को देख कर पता चल जाता है। दिन भर जूते को देखता रहता है, जूता ही उसके लिए एक मात्र अस्तित्व है। रात सपना भी जूतों का देखता होगा। उसके लिए दुनिया जूतों का एक अंबार है। उसके लिए दुनिया जूतों का एक ढेर है। इस दुनिया में न फूल खिलते हैं, इस दुनिया में न चांद ऊगता है, न इस दुनिया में कोई हंसता है, न इस दुनिया में आंसू हैं, इस दुनिया में जूते हैं। जूतों में ही वह आदमी जीता है। उसी का विस्तार चारों तरफ फैलना शुरू हो जाता है।

हम जो भीतर होते हैं वही हमें चारों तरफ बाहर दिखाई पड़ने लगता है। और चूंकि हम भीतर अशांत हैं, चूंकि हम भीतर पीड़ित और दुखी हैं, बाहर भी एक दुखपूर्ण जगत, एक अशांत जगत हमें दिखाई पड़ता है। और जब हम सुनते हैं कि कोई बुद्ध कहता है कि बहुत आनंद है, तो हमें हैरानी होती है कि झूठ कहता होगा। जब कोई क्राइस्ट कहता है कि परम शांति है, तो हम कहते हैं, झूठ कहता होगा। जब कोई कृष्ण कहता है कि बड़ा नृत्य चल रहा है जगत में, बड़ी लीला चल रही है परमात्मा की, तो हम चौंक कर सुनते हैं। यह बात हमें सच नहीं मालूम पड़ती। ये सारे के सारे लोग हमें इल्यूजन में, भ्रम में, सपने में मालूम पड़ते हैं।

यह बड़े मजे की बात है हम सब सपने में हैं और थोड़े से लोग जो जागते हैं वे हमें सपने में मालूम पड़ते हैं। ठीक भी है। क्योंकि जो हमें नहीं दिखाई पड़ता उसे हम कैसे स्वीकार कर सकते हैं? ... जिस बीज से सारा का सारा जाल पैदा होता है उस बीज को तोड़ कर देखें।

मैं एक प्रयोग के लिए कहता हूं। एक पंद्रह दिन के लिए एंबीशन छोड़ कर देखें, सिर्फ पंद्रह दिन के लिए। एक पंद्रह दिन के लिए ऐसे जीएं कि जो है ठीक है। कुछ भी नहीं होना है, कुछ भी नहीं पाना है। कहीं नहीं पहुंचना है, जो है ठीक है। एक पंद्रह दिन के लिए एक छोटा सा प्रयोग करें। केवल पंद्रह दिन के लिए। कुछ नहीं खो जाएगा। पंद्रह दिन में कहीं पहुंच भी नहीं जाइएगा। पंद्रह दिन में कुछ हो भी नहीं जाएगा। एक पंद्रह दिन के लिए एक छोटा सा एक्सपेरिमेंटल, लिविंग, जीवन में एक छोटा सा प्रयोग कि पंद्रह दिन के लिए मैं एंबीशन छोड़ता हूं। पंद्रह दिन एक नॉन-एंबीशस आदमी की तरह जीऊंगा, जिसकी कोई महत्वाकांक्षा नहीं है। और आप पंद्रह दिन के बाद दुबारा दुनिया में महत्वाकांक्षा रखने में समर्थ नहीं रह जाएंगे। पंद्रह दिन में आपको दुनिया एक नई ही शक्ल में दिखाई पड़ेगी। वे ही लोग जो कल भी दिखाई पड़े थे, वे ही मकान, वे ही रास्ते एक नया अर्थ ले लेंगे। एक पंद्रह दिन के लिए कोई आदमी महत्वाकांक्षा से मुक्त हो जाए और पाएगा कि दुनिया ने एक नया अर्थ, नया रूप, नया रंग ले लिया है। यह जमीन जहां हम पूछते थे, परमात्मा कहां है, पूछना बंद कर देंगे। वह हमें चारों तरफ दिखाई पड़ सकता है, लेकिन थोड़ी हिम्मत की जरूरत है, थोड़ी हिम्मत की जरूरत है, थोड़े

प्रयोग की जरूरत है। और थोड़े अपने पर प्रयोग की जरूरत है और अपने को समझने की जरूरत है। पंद्रह दिन कोई बहुत बड़ा वक्त नहीं है। लेकिन पंद्रह दिन का एक छोटा सा प्रयोग सारी जिंदगी को नया अर्थ दे सकता है।

देखें थोड़ा प्रयोग करके। मंदिरों में जाकर देखा होगा, साधु-संन्यासियों के पास बैठ कर देखा होगा, गीता, कुरान, बाइबिल पढ़ कर देखे होंगे, वह सब करके देखा होगा। उससे कुछ भी नहीं होगा। महत्वाकांक्षी चित्त जो भी पढ़ेगा उसमें से भी महत्वकांक्षा निकाल लेगा। अगर वह गीता पढ़ेगा, तो वह कहेगा कि बहुत ठीक, स्थितप्रज्ञ कैसे हुआ जा सकता है? मैं क्या करूं कि मैं भी उसी परम आनंद को उपलब्ध हो जाऊं, जिसकी गीता में बात कही है। महत्वाकांक्षा जारी है। अगर वह बाइबिल पढ़ेगा, तो पढ़ लेगा उसमें कि किंग्डम ऑफ गॉड, वह कहेगा, किंग्डम ऑफ गॉड को मैं कैसे पा लूं? मैं कैसे राजा हो जाऊं उस राज्य का जिसको जीसस कहते हैं।

जीसस के आठ शिष्य थे। जिस दिन जीसस को पकड़ा गया, जीसस को फांसी लगने का वक्त आया, तो उन आठों शिष्यों ने रात में जीसस से पूछा कि आप तो जा रहे हैं, एक बात बता दें। आप कहते थे कि परमात्मा का राज्य है, हम उसी राज्य के लिए आपके साथ आए थे। हमें यह बता दें कि मरने के बाद हमारी पोजिशंस क्या होंगी उस राज्य में? आप तो परमात्मा के बगल पर बैठ जाएंगे सिंहासन के, वह हम समझ गए, लेकिन हमारी स्थितियां क्या होंगी? हमारे पद, ओहदे क्या होंगे?

ये जो आदमी जीसस की बातें सुन कर आए हैं, ये भी स्वर्ग में पद और ओहदे का हिसाब रख कर आए हैं कि वहां इनको क्या पद, ओहदा होगा। वह एंबीशस माइंड अपना काम जारी रखे हुए है। वह महत्वाकांक्षी चित्त वही कर रहा है जो उसे करना है। तो चाहे गीता पढ़ें, चाहे मंदिरों में पूजा करें, चाहे उपवास, व्रत करें, वह जो एंबीशस माइंड है वह वही पूछता रहेगा कि मेरा पद, ओहदा क्या होगा? मरने के बाद स्वर्ग में, अगले जन्म में मेरी जगह क्या होगी? क्या मुझे मिलेगा? वह हमेशा ऐसी भाषा में पूछता है कि मैं क्या हो जाऊंगा? और जो आदमी इस भाषा में पूछता है कि मैं क्या हो जाऊंगा वह आदमी उसी रोग से ग्रसित है जिस रोग के कारण वह यह भी नहीं जान पाता कि मैं क्या हूं? क्या होने की दौड़ के कारण हमें पता ही नहीं चल पाता कि हम क्या हैं।

एक छोटी सी कहानी, अपनी बात मैं पूरी करूंगा।

मैंने सुना है, ईजिप्त में एक बहुत पुराना मंदिर है, हजारों वर्ष पुराना मंदिर है। लेकिन उस मंदिर के देवता का कभी किसी ने कोई दर्शन नहीं किया था। उस देवता के ऊपर पर्दा पड़ा हुआ था और पुजारी भी उसे नहीं छू सकते थे। सौ पुजारी थे उस मंदिर के और सौ पुजारी इकट्ठे ही उस मंदिर के गर्भगृह में प्रवेश करते थे, ताकि कोई एक पुजारी उसका पर्दा उठा कर अंदर की मूर्ति को न देख ले। हजारों वर्ष की परंपरा यही थी कि मूर्ति को देखना अनुचित है, अधार्मिक है, पाप है। कभी किसी ने उस मंदिर की मूर्ति नहीं देखी थी। जिन्होंने देखी होगी वे कई जमाने पहले खो गए थे। हजारों लोग उस मंदिर के दर्शन करने आए, लेकिन वे पर्दे के सामने ही दर्शन करके चले जाते थे। कौन पाप करता? लेकिन एक दिन एक पागल युवक आया उस मंदिर में और झुक कर जब वह पूजा कर रहा था, अचानक दौड़ा और उसने पर्दा उठा लिया। एक क्षण में यह हो गया। पर्दा उठा कर उसे क्या दिखाई पड़ा? बहुत आश्चर्य की बात हुई। वहां कोई मूर्ति न थी। वहां सिर्फ एक दर्पण था जिसमें उसे अपना ही चेहरा दिखाई पड़ा। वहां कोई मूर्ति थी ही नहीं। वहां सिर्फ एक दर्पण था, जिसमें उसने अपने को ही देखा।

लेकिन उस मंदिर का राज सारे लोगों में फैल गया। लोगों ने आना उस मंदिर में बंद कर दिया। क्योंकि जिस मंदिर में मूर्ति न हो भगवान की और धोखा दिया गया हो, सिर्फ दर्पण रखा हो, तो उस मंदिर में कौन

जाएगा? उस मंदिर में कोई भी नहीं गया। धीरे-धीरे वह मंदिर गिर गया। और उसके पुजारी उजड़ गए। क्योंकि जिस मंदिर में सिर्फ दर्पण हो वहां कौन जाएगा।

और मैं आपसे कहता हूं कि अगर लोग जानते होते, तो और सब मंदिरों को छोड़ देते, उसी मंदिर में जाते, क्योंकि जहां जो हम हैं वही दिखाई पड़ जाए, वही मंदिर है।

धर्म का एक ही राज है कि हमें दिखाई पड़ जाए कि हम कौन हैं। धर्म एक दर्पण बन जाए और हमें पता चल जाए कि हम कौन हैं।

लेकिन धर्म तभी दर्पण बनता है जब हम वह दौड़ छोड़ दें जो कुछ होने की दौड़ है। वह जो बिकमिंग है, वह जो कुछ होने का पागलपन है, जब छूट जाए और मन दौड़ न रहा हो, तब मन दर्पण बन जाता है, और उसका हमें पता चलता है जो हम हैं। और बड़े मजे की बात यह है कि जो हम हैं अगर उसका पता चल जाए तो फिर कुछ भी पाने को शेष नहीं रह जाता, और कुछ भी होने को शेष नहीं रह जाता। क्योंकि हम वही हैं जो परमात्मा है। और हम वह होना चाह रहे हैं जो ना-कुछ है। ना-कुछ होने की दौड़ में हम उसे खो देते हैं जो हम हैं। जैसे कोई सम्राट भिखारी होने की दौड़ में लगा हो, जैसे कोई स्वस्थ आदमी बीमार होने की दौड़ में लगा हो। जैसे कोई जिंदा आदमी कब्र खोज रहा हो, अपनी मौत खोज रहा हो। ऐसे ही क्या हम हैं उसका हमें कोई पता नहीं और हम जो खोज रहे हैं वह दो कौड़ी की चीजें खोजते हैं और जीवन उसमें नष्ट कर देते हैं। फिर इसमें हो जाते हैं पीड़ित, दुखी, अशांत, तनावग्रस्त और रोते-रोते जिंदगी बीतती है, जिंदगी एक बोझ, एक बोर्डम, एक ऐसा बोझ हो जाती है जहां न कोई खुशी है, न कोई संगीत।

ये थोड़ी सी बातें मैंने कही हैं। थोड़ी सी क्या मैंने एक ही बात कही है। मैंने यह कहा है कि अगर महत्वाकांक्षा है, तो अशांत होना अनिवार्य है। अगर महत्वाकांक्षा के साथ जीना है, तो फिर शांति की कभी बात मत पूछना और कभी खोजना भी मत। फिर कहीं जाना ही मत, फिर व्यर्थ समय खराब होगा। और अगर कोई कहता हो कि महत्वाकांक्षा रहते हुए शांत हो सकते हैं, तो वह आदमी धोखा देगा और शोषण करेगा।

महत्वाकांक्षा रहते शांत होना असंभव है। अगर महत्वाकांक्षी रहना है, तो अशांत रहने की तैयारी रखना, और भूल कर भी शांति का कोई उपाय मत खोजना। और अगर शांत होना है, तो शांत होने की बात ही मत पूछना, महत्वाकांक्षा को छोड़ देना। और पाया जाता है कि महत्वाकांक्षा के जाते ही शांति ऐसे चली आती है जैसे दीये के बुझते अंधकार आ जाता है। दीया बुझा और फिर अंधकार को लाने नहीं जाना पड़ता कहीं, कि दीया बुझा करफिर घर के बाहर गए कि अंधकार आओ। वह दीया बुझा कि अंधकार आ जाता है। फिर उसे पुकारना नहीं पड़ता।

महत्वाकांक्षा का दीया बुझा कि शांति चारों तरफ से चली आती है। शांति मौजूद ही है, आ भी नहीं जाती, वह सिर्फ महत्वाकांक्षा के कारण दिखाई नहीं पड़ती। और जिस दिन कोई व्यक्ति शांत हो जाए उसी दिन सत्य को जान लेता है, उसी दिन जीवन के अर्थ को जान लेता है, उसी दिन सारा दुख मिट जाता है, सारी मृत्यु समाप्त हो जाती है। उसके द्वार खुल जाते हैं जो अमृत है। उसके द्वार खुल जाते हैं जो न कभी पैदा हुआ और न कभी मरता है। उसके द्वार खुल जाते हैं जिसके द्वार खुल जाने के बाद फिर न कोई आकांक्षा रह जाती है, न कोई इच्छा रह जाती है। उस अनंत को, उस असीम को ही ईश्वर कहा है। वे जो शांत हो जाते हैं, ईश्वर को उपलब्ध हो जाते हैं। वे जो अशांत हैं वे और भी गहरी से गहरी अशांति में उतरते चले जाते हैं। वे अपने हाथ से अपने लिए नरक निर्मित कर लेते हैं और जो स्वर्ग उन्हें मिला था, जिस पर उनका जन्मसिद्ध अधिकार था, उस स्वर्ग को अपने हाथों खो देते हैं। हम उन अभागे लोगों में से हैं जिन्होंने स्वर्ग का अधिकार खो दिया है और नरक

निर्मित कर लिया है। हम उन अभागे लोगों में से हैं कि प्रकाश जिनकी मालकियत थी, जो जिसके मालिक थे, उसको खो दिया है और द्वार-द्वार भीख मांगते भटक रहे हैं। हम अपने हाथों बने भिखारी हैं। और हम जिस दिन चाहें, जिस क्षण चाहें यह भिखमंगापन मिट सकता है और हमारा सम्राट प्रकट हो सकता है। धर्म हमारे भीतर सम्राट के प्रकट होने की प्रक्रिया का नाम है।

ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं। इसलिए नहीं कि मेरी बातें सुनेंगे और एक मनोरंजन होगा। मनोरंजन बहुत हो रहा है। इसलिए भी नहीं कि मेरी बातें सुनने से आपको कोई लाभ हो जाएगा। यह धोखा भी बहुत दिन चल चुका है कि अच्छी बातें सुनने से कुछ लाभ हो जाए। नहीं, अच्छी बातें सुन लेने से कुछ भी नहीं होता है जब तक कि कोई प्रयोग करने का साहस हममें न हो। और प्रयोग का थोड़ा सा भी साहस हो, तो एक इंच प्रयोग भी उतना ले जाता है जितना हजारों मील की बातचीत कहीं नहीं ले जाती।

तो मैंने एक छोटे से प्रयोग के लिए कहा हैः नॉन-एंबीशन के, गैर-महत्वाकांक्षा के एक छोटे से प्रयोग के लिए। एक पंद्रह दिन के लिए हिम्मत करके देखें। छोड़ दें पंद्रह दिन कुछ भी नहीं होना है। और आप पाएंगे कि जिंदगी में एक नया ही द्वार खुल गया जो बंद था। उस द्वार से हवाएं आएंगी, उस द्वार से प्रकाश भी आएगा, उस द्वार से जीवन की वर्षा भी होगी। और कुछ होगा जिसे शब्दों में कहना असंभव है।

मेरी बातें इतने प्रेम और शांति से सुनीं, उससे बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

दूसरा प्रवचन

स्वयं को जानना सरलता है

मेरे प्रिय आत्मन्!

मैं कौन हूं? इस प्रश्न का उत्तर शायद मनुष्य के द्वारा पूछे जाने वाले किसी भी प्रश्न से ज्यादा सरल है, और साथ ही और जल्दी से यह भी कह देना जरूरी है कि इस प्रश्न से ज्यादा कठिन किसी और प्रश्न का उत्तर भी नहीं है। सरलतम भी यही है और कठिनतम भी। सरल इसलिए है कि जो हम हैं अगर उसका प्रश्न भी हल न हो सके, अगर उसका उत्तर पाना भी सरल न हो, तो फिर इस जगत में किसी और प्रश्न का उत्तर पाना सरल नहीं हो सकता। जो मैं हूं, अगर मैं उसे भी न जान सकूं, तो मैं और किसे जान सकूंगा?

किसी भी दूसरे को मैं केवल बाहर से परिचित हो सकता हूं, जान नहीं सकता। एक्वेंटेंस हो सकता है, पहचान हो सकती है। क्योंकि मैं सदा दूसरे के बाहर हूं, मैं कभी भी दूसरे के भीतर प्रविष्ट नहीं हो सकता हूं। मैं कितना ही घूमूं, मैं दूसरे के बाहर ही घूमता रहूंगा। तो मैं दूसरे से परिचित हो सकता हूं लेकिन दूसरे का ज्ञान कभी भी नहीं हो सकता। एक्वेंटेंस हो सकता है, नालेज नहीं हो सकती।

तो अगर मेरा ही ज्ञान संभव न हो, सरल न हो, तो फिर और सरल क्या होगा? अगर स्वयं का ज्ञान कठिन है तो फिर अज्ञान के अतिरिक्त और कुछ भी सरल नहीं हो सकता। अगर स्वयं का ज्ञान कठिन है तो फिर इस जगत में और किसी बात को जानने की तो कल्पना और सपना भी नहीं देखा जा सकता।

इसलिए मैं कहता हूंः स्वयं का ज्ञान बहुत सरल है। और इसलिए भी कहता हूं कि स्वयं को जानने के लिए कहीं भी तो नहीं जाना है, कोई यात्रा नहीं करनी है। स्वयं को खोजने के लिए मुझे कहीं पहुंचना नहीं है, मैं वहां हूं ही। स्वयं को जानने के लिए मुझे कुछ खोदना भी नहीं है, कुछ बनाना भी नहीं है, मैं बना ही हुआ हूं। इसलिए स्वयं को जानना सरलतम है। लेकिन मैंने कहा जल्दी से यह भी कह देना जरूरी है कि स्वयं को जानने से ज्यादा कठिन भी कुछ और नहीं है। यह क्यों? यह इसलिए कि चूंकि हम स्वयं हैं, इसलिए हमारे जानने की धारा और सब जगह तो भटकती रहती है, स्वयं पर कभी नहीं आती। आंखें दूसरों को देख लेती हैं, आंख खुद अपने को नहीं देख पाती। मैं अपने हाथ से सबको पकड़ सकता हूं सिर्फ अपने हाथ को नहीं पकड़ सकता। एक चिमटे से हम सब कुछ पकड़ सकते हैं सिर्फ उस चिमटे को नहीं पकड़ सकते। अब यह बड़ी अजीब बात है, चिमटा सबको पकड़ लेता है सिर्फ अपने को छोड़ कर। अपने को पकड़ने में चिमटा एकदम असमर्थ हो जाता है। आंख सबको देख लेती है सिर्फ अपने को छोड़ कर। अगर हम कोई कोशिश करें आंख से ही आंख को देखने की तो असफलता निश्चित है। हां, किसी दर्पण में देख सकते हैं, लेकिन वहां हम आंख को नहीं देख रहे हैं, आंख के प्रतिफलन को देख रहे हैं, प्रतिफलन दूसरी चीज है। आंख सबको देखती है, देखना बड़ी सरल बात है। आंख के लिए देखने से ज्यादा सरल क्या है? लेकिन अपने को ही देखना सबसे ज्यादा कठिन है। और चूंकि हम हैं हीं। ध्यान रहे, जो हमारे पास नहीं है उस पर नजर जाती है और जो हमारे पास है उसे हम भूल जाते हैं। जो भी हमारे पास है वह भूल जाता है और "हम" हमारे पास सदा से हैं, अनादि से हैं, अनंत से हैं। ऐसा कभी भी न था कि हम अपने पास न रहे हों। तो हम भूल ही गए हैं, भूल ही गए हैं, न मालूम कब, न मालूम कब भूल गए हैं।

जो चीज पास हो वह भूल जाती है। जिसके पास धन हो उसे धन भूल जाता है, सिर्फ गरीब को धन याद रहता है, क्योंकि उसके पास धन नहीं है। स्वस्थ आदमी को स्वास्थ्य भूल जाता है, सिर्फ बीमार को स्वास्थ्य

याद रहता है, क्योंकि उसके पास स्वास्थ्य नहीं है। कभी स्वस्थ आदमी को पता नहीं चलता कि स्वास्थ्य है। अगर किसी को पता चलता हो तो जान लेना कि वह आदमी बीमार है। बीमार को ही कांशसनेस होती है, चेतना होती है स्वास्थ्य की, स्वस्थ आदमी को नहीं होती। जो हमारे पास है वह भूल जाता है और जो हमारे पास नहीं है वह खटकता रहता है, वह दिखाई पड़ता रहता है। इसीलिए तो जो हम मांगते हैं जब तक नहीं मिलता तब तक ही याद में रहता है और जब मिल जाता है तब व्यर्थ हो जाता है।

एक आदमी धन खोजता है और धन पा लेता है और सोचता था कि धन पा लेगा तो न मालूम क्या मिल जाएगा, और धन पाकर कुछ भी नहीं मिलता, धन भी भूल जाता है। जो हमारे पास है वह भूल जाता है और हमसे ज्यादा पास हमारे कुछ भी नहीं है। न धन हो सकता है, न मकान हो सकता है, न प्रेमी हो सकता है। हमसे ज्यादा हमारे पास कोई भी नहीं है और हम सदा से ही अपने पास हैं। ऐसा कभी भी नहीं हुआ कि एक क्षण को भी हम अपने से दूर हो गए हों। इसलिए स्वयं को याद करना और स्वयं को जानना बहुत कठिन है। और इसलिए भी कठिन है कि जानने के लिए दो की जरूरत है, एक जो जाने और एक जो जाना जाए। जानने के लिए कम से कम दो तो चाहिए। मैं आपको जान सकता हूं क्योंकि आप वहां हैं, मैं यहां हूं, बीच में फासला है, हम दो हैं। हम सूरज को जान सकते हैं, हम चांद को जान सकते हैं, क्योंकि दोनों के बीच फासला है, और दो हैं। जानने वाला अलग है और जो जाना जा रहा है वह अलग है। नोअर और नोन अलग हैं। लेकिन यहां एक और मुसीबत है कि स्वयं को जानने में जानने वाला वही है जो जाना जाने वाला है। नोअर और नोन, ज्ञाता और ज्ञेय एक है। यह सबसे ज्यादा कठिन मामला है।

यह ऐसा है कि जैसे प्रेमी भी आप हैं और प्रेमिका भी आप, फिर कठिनाई समझ में आ सकती है। आपको अकेला छोड़ दिया जाए और कहा जाए कि प्रेमी भी आप हैं और प्रेमिका भी आप हैं। प्रेम भी आप लें और प्रेम भी आप दें। आप अकेले ही कमरे में छोड़ दिए गए। आप या तो पागल हो जाएंगे या बाहर आकर कहेंगे कि इस प्रेम के खेल से क्षमा कर दें। यह मैं नहीं करना चाहता हूं। जैसे कोई खुद को ही प्रेम करे और खुद को ही प्रेम करने वाला हो और मुश्किल में पड़ जाए। वैसा ही, मैं कौन हूं, इस प्रश्न की खोज में गया हुआ आदमी मुश्किल में पड़ जाता है। वहां दो नहीं हैं, वहां एक ही है। वहां वही है, सिर्फ अकेला ही है, उसी को जानना है, उसी को जाना भी जाना है। उसको ही ज्ञाता भी बनना है, उसको ही ज्ञेय भी बनना है। यह सबसे ज्यादा कठिन बात है। एक ही चीज का एक साथ, साइमलटेनियसली, ज्ञाता और ज्ञेय बन जाना बहुत मुश्किल मामला है। इसका मतलब है एक क्षण में मैं वहां भी खड़ा हो जांऊ जहां ऑब्जेक्ट बन जाऊं और वहां भी खड़ा हो जाऊं जहां सब्जेक्ट बन जाऊं। एक ही साथ, एक ही क्षण में दो जगह कैसे खड़ा हो जाऊं? जानने वाला बनता हूं तो जानने को कुछ नहीं रह जाता है, और अगर जाना जाने वाला बन जाऊं तो जानने को कोई नहीं बचता है।

इसलिए मैंने कहा कि जल्दी से कह दूं कि इससे ज्यादा कठिन और कोई सवाल भी नहीं; लेकिन इससे ज्यादा सरल भी कोई सवाल नहीं है। और जो सवाल सरल भी हो और कठिन भी हो एक साथ, उस सवाल के लिए क्या कहा जाए? उसे कठिन कहा जाए कि सरल कहा जाए? ये दोनों बातें एक साथ हैं। और आप कहेंगे कि ऐसा तो होता नहीं, ये दोनों उलटी बातें एक साथ कैसे हो सकती हैं? लेकिन मैं आपसे कहता हूं, जो नहीं जानते हैं वही यह कहेंगे। जो जानते हैं वे हैरान होकर कहेंगे कि दुनिया में सभी उलटी बातें एक साथ साथ-साथ ही होती हैं। हमने सिर्फ सुविधा के लिए विरोधी चीजों को तोड़ लिया है। विरोधी चीजें कहीं भी टूटी हुई नहीं हैं। हम कहते हैं, रात अलग है और दिन अलग है। कहां हैं अलग? किस जगह अलग हैं? कौन सी सीमा रेखा है जहां रात अलग है और दिन अलग हैं? रात दिन बन जाती है, दिन रात बन जाता है। हम कहते हैं, अंधेरा-उजाला

अलग हैं, किसने कहा है? कोई नासमझ कहता होगा। अंधेरे और उजाले के बीच सिर्फ डिग्रीज का फासला है। विरोधी नहीं हैं वे। हम कहते हैं, जन्म और मौत अलग हैं, झूठी है यह बात। जन्म ही मौत बन जाती है, मौत ही जन्म बन जाता है। दोनों अलग नहीं हैं, एक ही चीज का ग्रोथ... जन्म ही बढ़ते-बढ़ते एक दिन मौत बन जाता है। कब आती है मौत? वह जन्म की ही बढ़ती-बढ़ती-बढ़ती एक दिन मौत बन जाती है। और जो जानते हैं वे कहते हैं कि मौत फिर बढ़ते-बढ़ते जन्म बन जाती है। जन्म और मौत दो अलग चीजें नहीं हैं सिर्फ अज्ञानियों ने दो बना रखी हैं।

और छोटी सरल सी बात, हम उदाहरण के लिए लें, हम कहते हैंः गर्म और ठंडा, और समझते हैं दो अलग चीजें होंगी, तो बड़ा गलत समझते हैं। एक दिन एक छोटा सा प्रयोग करेंः एक हाथ को ठंडे बर्फ पर रखें और एक हाथ को स्टोव के पास गर्म करें, और फिर दोनों हाथों को एक ही बर्तन में पानी भरा हो दोनों हाथों को उसमें डाल दें, और तब आपको बड़ी हैरानी होगी। एक हाथ को वह पानी गर्म लगेगा और एक हाथ को वह पानी ठंडा लगेगा। वह पानी बिल्कुल एक है, एक ही बर्तन में भरा है। तब आपको पता चल जाएगा कि गर्मी और ठंड अलग-अलग चीजें नहीं हैं। आपको पता चल जाएगा एक ही पानी है, एक ही तापमान का है। आपने एक हाथ स्टोव के पास रखा और एक हाथ बर्फ पर रखा; एक ठंडा हो गया, एक गरम हो गया। दोनों को एक ही बर्तन में डाल दें और आपको पता चल जाएगा कि दोनों हाथों को पानी अलग-अलग मालूम होगा, एक को गर्म मालूम होगा, एक को ठंडा मालूम होगा। फिर गर्मी और ठंड अलग-अलग कैसे हो सकती हैं। एक ही बर्तन का पानी ठंडा भी मालूम होता है, गर्म भी मालूम होता है। गर्मी और ठंड दो चीजें नहीं हैं। गर्मी और ठंड एक ही चीज के बीच डिग्रीज का फासला है। क्रमिक एक ही चीज की यात्रा है।

जिंदगी में जहां-जहां विरोध दिखाई पड़ता है, वहां-वहां कोई विरोध नहीं है। जिंदगी में विरोध है ही नहीं। लेकिन हम, हम क्योंकि जिंदगी बहुत उलझ जाएगी, उसे साफ-सुथरा करके चीजों को तोड़ देते हैं, खंड-खंड कर लेते हैं। कहते हैं, गर्मी अलग है, ठंड अलग है। कहते हैं, बुरा आदमी अलग है, अच्छा आदमी अलग है। झूठी है यह बात। न कोई बुरा आदमी अलग है और न कोई अच्छा आदमी अलग है। बुरे से बुरा आदमी अच्छे से अच्छे आदमी से जुड़ा है ठंड और गर्मी की तरह, एक ही चीज की दो डिग्रीज हैं, और कोई फर्क, फासला नहीं है। निकृष्टतम आदमी श्रेष्ठतम आदमी से जुड़ा है। उनके बीच एक ही चीज का फैलाव है। कोई दो चीजें नहीं हैं। न कोई दुरात्मा है और न कोई महात्मा है। राम और रावण एक ही चीज की दो शक्लें हैं। लेकिन हमने सब चीजें तोड़ रखी हैं और तोड़ने से हमने बिल्कुल झूठी दुनिया बना रखी है, और उस झूठी दुनिया की वजह से समझना बहुत मुश्किल हो जाता है।

इसलिए मैं आपसे कहता हूंः जिंदगी का जहां भी असली सवाल पैदा होगा वहां उलटी चीजें हमेशा साथ होंगी। जिंदगी पैराडॉक्स है। है नहीं अपने में पैराडॉक्स। विरोध है नहीं, पहेली है नहीं। हमारी समझ बहुत कम है। हम खंड-खंड में समझ पाते हैं इसलिए मुसीबत हो जाती है। जैसे कोई एक बड़ा मकान हो और उस मकान में एक छोटा सा छेद हो और आप उस छेद में से झांक कर देखें, तो आपको पूरा मकान एक साथ दिखाई नहीं पड़ेगा। पहले एक छोटा सा टुकड़ा दिखाई पड़ेगा, एक कुर्सी दिखाई पड़ रही है, फिर आपकी आंख आगे गई, फिर आपको एक फूलों का बर्तन दिखाई पड़ता है, फिर आपकी आंख और आगे गई और फिर आपको एक तस्वीर दिखाई पड़ती है, फिर आंख और आगे गई आपको कुछ और दिखाई पड़ता है। आपने चार टुकड़ों में तोड़ कर उस कमरे को देखा, क्योंकि देखने की क्षमता बहुत छोटी है। वह कमरा एक है, वहां कहीं चार टुकड़े नहीं हैं।

जो आदमी कमरे के भीतर पहुंच जाएगा वह कहेगा, कमरा एक है। लेकिन आपने उसे चार टुकड़ों में देखा। आपकी देखने की क्षमता छोटी है। आप थोड़ा-थोड़ा, थोड़ा-थोड़ा करके देख रहे हैं।

आपके मेजरमेंट छोटे हैं, जिंदगी बहुत बड़ी है। और अगर हम इतनी बड़ी जिंदगी को इकट्ठा लें, तो हम बहुत मुश्किल में पड़ जाएंगे। अगर राम और रावण को हम इकट्ठा ले लें, तो हमारी बड़ी मुसीबत हो जाएगी, हमारी सारी रामायण गड़बड़ हो जाएगी। हम तो राम को अलग मानते हैं, रावण को अलग मानते हैं, तब हमें सुविधा पड़ती है। बुरे आदमी को अलग काट देते हैं, अच्छे आदमी को अलग काट देते हैं, तब हमें सुविधा पड़ती है। तब हम वाटरटाइट कंपार्टमेंट बना लेते हैं। हम कहते हैं, यह यह है, वह वह है। अ अ है, ब ब है। अ कभी ब नहीं हो सकता।

अरस्तू का यही तर्क है। और सारी दुनिया अरस्तू के गलत तर्क से प्रभावित है। अरस्तू कहता हैः ए इ.ज ए, बी इ.ज बी; ए कैन नॉट बी बी। अ अ है, ब ब है, और अ कभी ब नहीं हो सकता। और इससे ज्यादा गलत बात दुनिया में कभी नहीं कही गई। और इससे ज्यादा गलत बात का प्रभाव कभी भी इतना ज्यादा नहीं रहा। अरस्तू सारी दुनिया पर छाया हुआ है। सारी दुनिया के विचारशास्त्र का वह पिता है।

जब कि सच्चाई यह है कि ए इ.ज ए, ए इ.ज आल्सो बी। अ अ भी है और अ ब भी है। जिंदगी तो यही है। जिसे आप पतझड़ कहते हैं वह वसंत का ही दूसरा रूप है। जिसे आप बुढ़ापा कहते हैं वह बचपन की ही दूसरी तस्वीर है। जिसे आप कुरूपता कहते हैं वह सौंदर्य का ही दूसरा पहलू है। जिसे आप दुख कहते हैं वह सुख की ही दूसरी चोट है। जिसे आप सम्मान कहते हैं वह अपमान का ही दूसरा रास्ता है। यहां जिंदगी में सब जुड़ा है। यहां अलग-अलग, खंड-खंड कुछ भी नहीं है। और अगर यह बात खयाल में आ जाए तो यह बात भी खयाल में आ जाएगी कि जो प्रश्न सबसे ज्यादा सरल है वह सबसे ज्यादा कठिन भी क्यों है? और अगर यह भी खयाल में आ जाए कि जो प्रश्न एक ही साथ सरल है और एक ही साथ कठिन है तो एक बात और समझ में आ जाएगी। एक बात और भी समझ में आ जाएगी और वह यह... एक छोटी सी कहानी से मैं समझाऊंगा।

एक फकीर एक रास्ते से निकल रहा था और मस्जिद के पास की मीनार पर चढ़ कर अजान दे रहा था सुबह मस्जिद का मुल्ला। वह गिर पड़ा और उस फकीर के कंधे पर गिरा और फकीर की गर्दन टूट गई। वह फकीर अस्पताल में भर्ती किया गया। उसके शिष्य वहां उससे मिलने गए और उन शिष्यों ने पूछा, क्योंकि वे जानते थे उस फकीर की यह आदत थी कि जिंदगी में चाहे कुछ भी हो जाए वह उनसे कुछ न कुछ नतीजे लेता था। तो उन्होंने पूछा कि अब हम बड़ी मुश्किल में हैं। इस आदमी का आपके ऊपर गिरना और आपकी गर्दन टूट जाना, इससे आपने नतीजा क्या लिया? उस फकीर ने कहाः बहुत साफ नतीजा लिया। अब तक मैंने सुना था कि जो आदमी गिरेगा उसकी गर्दन टूटेगी। अब मुझे पता चला कि गिर कोई सकता है, पर गर्दन किसी की टूट सकती है। और अब तक मैं समझता था कि गिरने वाला अलग है और जिस पर गिरा है वह अलग है, अगर दोनों अलग होते तो कोई गिरता, कोई की गर्दन कैसे टूट जाती? अब मैं समझा कि सब एक हैं, जो गिरा वह भी वही है और जिस पर गिरा वह भी वही है। इसलिए तो मेरी गर्दन टूट गई और गिरा वह।

थोड़ा कठिन है लेकिन। थोड़ा कठिन है कि जो गिरा है और जिस पर गिरा है, उन दोनों को हम एक न देख पाएं। और थोड़ा कठिन है कि जो मर रहा है और जो पैदा हो रहा है, उन दोनों को हम एक न देख पाएं। और थोड़ा कठिन है कि जो फूल खिल रहा है और जो फूल मुरझा रहा है, उन दोनों को हम एक न देख पाएं कि वहां जो कुम्हला के सिकुड़ रहा है वही यहां फूल कर फैल रहा है।

हमने नदी में देखी हैं लहरें। एक पत्थर फेंक दें सरोवर में और लहरें उठेंगी। लहर उठी हुई मालूम पड़ेगी और उसके पास ही गड्ढा होगा। लेकिन कभी आपने सोचा कि जो गड्ढा है वही लहर बन गई है। वह गड्ढा बन गया है इसलिए लहर ऊपर उठ गई। आप बड़े-बड़े पहाड़ देखने जाते हैं, आपने कभी खयाल किया कि नीचे जो खाई है वही पहाड़ बन गई है। वह जो खाई है वही पहाड़ है। वे दो अलग चीजें नहीं हैं। अगर दुनिया से सारी खाई मिटा दो, सारे पहाड़ मिट जाएंगे। कोई पहाड़ बच सकता है अगर दुनिया से सारी खाई मिटा दी जाए? खाई गई कि पहाड़ गए। जिंदगी के सब विरोध जुड़े हुए हैं, इस पर मैं क्यों जोर दे रहा हूं? इस पर इसलिए जोर दे रहा हूं कि यह अगर खयाल में आ जाए कि यह विरोधी दिखाई पड़ने वाली बात कि मैं कौन हूं, सबसे सरल भी है और सबसे कठिन भी। इस पर क्यों इतना मैं आग्रह कर रहा हूं कि ये दोनों बात एक साथ हैं, इससे फायदा क्या होगा? इससे फायदा होगा क्योंकि जैसे ही यह समझ में आ जाए कि कोई चीज सरल भी है, कठिन भी है। न वह सरल रह गई, न कठिन रह गई। तभी तक कोई चीज सरल है जब तक वह कठिन न हो। और तभी तक कोई चीज कठिन हो सकती है जब तक वह सरल न हो। दोनों चीजें एक साथ कैसे हो सकती हैं?

एक आदमी या तो जिंदा हो सकता है या मरा हुआ हो सकता है। और अगर हम यह कहें कि वह आदमी जिंदा भी है और मरा हुआ भी, तो इसका मतलब यही होगा कि वह आदमी कुछ ऐसा हैः न जिंदगी का वहां कोई अर्थ है, न मरने का वहां कोई अर्थ है। वह आदमी अगर एक ही साथ जिंदा और मरा हुआ हो सकता है तो इसका यह मतलब हुआ कि जिंदगी और मरना दो ऊपरी घटनाएं हैं, भीतर वह आदमी बिल्कुल अलग है।

ये दोनों बात एक साथ हो सकती हैं। दोनों विरोधी बातें इसीलिए हो सकती हैं कि सत्य तीसरा है। नहीं तो कभी दो विरोधी बातें एक साथ नहीं हो सकतीं। अगर पानी ठंडा ही हो तो उसी के साथ गरम नहीं हो सकता, और अगर पानी गरम ही हो तो उसी के साथ ठंडा नहीं हो सकता। लेकिन पानी ठंडा और गरम एक साथ है, इसका मतलब यह हुआ कि पानी न ठंडा है, न गरम है। ठंडा और गरम पानी के ऊपर आने-जाने वाली घटनाएं हैं। पानी का जो अपना होना है, वह जो उसकी अपनी आत्मा है, वह न ठंडी होती है और न गरम होती है।

जिंदगी का असली सवाल मैं कौन हूं, न सरल है, न कठिन, क्योंकि वह दोनों है। इसका क्या मतलब? इसका मतलब यह है कि यह मैं कौन हूं? इसको सवाल की तरह लेना ही मत, नहीं तो भटक जाओगे। यह सवाल नहीं है। सवाल वे होते हैं जिनके जवाब किसी से मिल सकते हों। प्रश्न उसे कहते हैं जिसका जवाब किसी से मिल सकता हो। यह प्रश्न नहीं है कि मैं कौन हूं? क्योंकि इसका जवाब किसी से भी नहीं मिल सकता। और बहुत मजे कि बात यह है कि आपसे भी नहीं मिल सकता। जवाब तो तब मिलेगा जब आप भी नहीं होंगे। जवाब किसी से भी नहीं मिल सकताः न किसी दूसरे से और न खुद से। जवाब उस दिन मिलेगा जब आप नहीं होंगे।

अब यह और उलझन की बात है। जवाब उस दिन मिलेगा जिस दिन प्रश्न भी नहीं होगा। फिर करें क्या? अगर यह कठिन नहीं, यह सरल नहीं, अगर ये दोनों हैं, अगर इन दोनों से हम अलग हैं, तो हम करें क्या? इसका मतलब एक हुआ, इसको सवाल न बनाएं। इसको सवाल बनाया तो जवाब किताबों में लिखे हुए हैं, उन जवाबों को आप खोज लेंगे, पूछेंगे, मैं कौन हूं? किताब खोलेंगे, वहां लिखा होगा कुछ, वह पढ़ लेंगे और कहेंगे, यह मैं हूं। कहीं लिखा होगा कि आप आत्मा हैं, तो पढ़ लेंगे, सबने पढ़ लिया है। कहीं लिखा होगा कोई आत्मा वगैरह नहीं है, आदमी सिर्फ पदार्थ है, खाओ-पीओ मौज करो बस यही है और कुछ भी नहीं है, कोई इसको पढ़ लेगा और इसको कंठस्थ कर लेगा और कहेगाः ऋणं कृत्वा घ्रतम पीवेत, ऋण लेकर घी पीओ। कुछ है ही नहीं। न कोई आत्मा है, न कोई किसी से ऋण लेता है, न कोई किसी को चुकाता है, कोई चिंता की बात नहीं। कोई

पढ़ लेगा आत्मा है, और न आत्मा मरती और न मारी जा सकती है। कोई पढ़ लेगा कि आत्मा है न उसे पुण्य छूता, न पाप छूता, और इनको कंठस्थ कर लेगा। आपने सवाल बनाया तो आप जवाब सीख लेंगे कहीं जाकर।

मैं आपसे कहना चाहता हूं कि यह सवाल ऐसा नहीं है कि किसी से आप जवाब सीख लें। यह सवाल बहुत और तरह का है, जिसका कोई जवाब कभी भी, कहीं से भी नहीं मिल सकता, न कभी किसी को कहीं से मिला है। और जिसने जवाब पकड़ लिया वह भटक गया, फिर उसको रास्ता भी नहीं मिला। इस बात को मैं इस भांति लेना चाहता हूं कि आपके सामने यह साफ हो जाए कि यह कोई सवाल नहीं है जिसे हमें किसी से पूछ लेना है। यह एक अंतर-जिज्ञासा है जिसका जवाब नहीं मिलेगा, बल्कि हम जिज्ञासा करेंगे तो धीरे-धीरे प्रश्न भी खो जाएगा। ये दोनों बातें, बहुत बुनियादी फर्क है।

एक आदमी बुद्ध के पास गया। वह जवान था और वर्षों से यह मैं कौन हूं? इसी की खोज में लगा हुआ था। उसने बुद्ध से जाकर पूछा, सत्य क्या है? मैं कौन हूं? मोक्ष कहां है? बुद्ध ने कहाः तू सारे सवाल एकदम से पूछ ले, क्योंकि सवाल एक ही है, शक्लें बहुत हो सकती हैं। तू सारे सवाल पूछ ले। उसने कोई दस-ग्यारह सवाल पूछ डाले। बुद्ध ने उससे कहा कि तूने ये सवाल किसी और से भी पूछे हैं? उसने कहाः मैंने बहुतों से पूछे हैं। बुद्ध ने कहाः बहुतों से पूछे तुझे कहीं उत्तर मिला या नहीं? तो उस युवक ने कहाः उत्तर सबने मुझे दिए, मुझे मिला नहीं। तो बुद्ध ने कहाः तू फिर मुझसे पूछने आ गया, मैं भी उत्तर दूंगा और तुझे मिलेगा नहीं। इससे तू यह मत समझना कि देने वालों ने गलत उत्तर दिए थे। इससे तू यह समझना कि ये सवाल ऐसे हैं कि इनके उत्तर कोई दूसरा दे ही नहीं सकता है।

सही उत्तर भी दिया जाए, दिया हुआ उत्तर बेकार हो जाता है। कृष्ण ने उत्तर दिया है, बुद्ध ने दिया है, क्राइस्ट ने दिया है, महावीर ने दिया है, लेकिन सब उत्तर बेकार हो गए। महावीर के बेकार उत्तरों को लेकर जैनियों की जमात खड़ी है। महावीर ने दिया है और बिल्कुल ठीक दिया है लेकिन दिया हुआ उत्तर दूसरे के हाथ में आकर एकदम बेकार हो जाता है। कृष्ण के दिए हुए उत्तर गीता को कंठस्थ करने वाले लोगों के साथ खराब हो गए हैं। क्राइस्ट के उत्तरों का परिणाम देखना हो तो क्रिश्चिएनिटी चारों तरफ खड़ी है। ये सब सीखे हुए उत्तरों के बने हुए संप्रदाय हैं। और किसी दूसरे से देते ही उत्तर मर जाता है। यह वैसे ही है जैसे एक फूल पौधे पर खिला है, जब तक वह पौधे पर है जिंदा है और जैसे ही आप तोड़ कर घर की तरफ चले कि वह मर गया। उसका पौधे पर होना ही उसका जिंदा होना था। वह जो जवाब है वह बुद्ध के ऊपर जिंदा था, वह महावीर की वाणी पर जिंदा था। वह जब कृष्ण बोल रहे थे तो वह पौधे पर लगा हुआ फूल था और जैसे ही तोड़ कर आप घर आए और आपने किताब बंद करके नमस्कार किया वह मर गया। सब गीता मरी हुई किताबें हैं, सब कुरान मरी हुई किताबें हैं, क्योंकि सब उत्तर पौधों से तोड़ कर ले आए गए हैं और हम उनको रखे हुए हैं सम्हाल कर।

बुद्ध ने कहा कि नहीं, तुझे यह खयाल नहीं आया कि दूसरे से उत्तर मिल ही नहीं सकता है। मुझसे भी नहीं मिल सकता। वह युवक पूछने लगा, क्या आपको पता नहीं है? बुद्ध ने कहाः पता मुझे है और बहुतों को पता रहा है, लेकिन अपना पता सिर्फ अपने ही काम पड़ता है।

उस युवक ने कहा फिर मैं क्या करूं?

बुद्ध ने कहाः पूछ मत, एक साल यहां रुक जा और चुप होने की कोशिश कर। पूछ मत, क्योंकि पूछना भी एक तनाव, परेशानी है, पूछ ही मत। न सवाल, न जवाब, तू एक साल चुप होकर यहां रुक जा और साल भर बाद तू पूछना, अगर तू पूछेगा तो मैं उत्तर दूंगा। उस युवक ने कहाः ठीक है, मैं यह परीक्षा से भी गुजरने को

राजी हूं। मैं एक साल चुप रहूंगा। लेकिन एक साल बाद आप मेरे सवालों का जवाब देंगे? बुद्ध ने कहाः यह वायदा रहा। एक भिक्षु पीछे वृक्ष के नीचे बैठा था, जोर से हंसने लगा। उस पूछने वाले युवक ने पूछा कि यह भिक्षु क्यों हंस रहा है? बुद्ध ने कहाः उसी से पूछ लो। उस भिक्षु से पूछाः क्यों हंसते हो? उसने कहाः मैं हंसता हूं इसलिए कि बुद्ध बेईमान हैं, ये झूठ बोल रहे हैं, यह सरासर झूठ है। क्योंकि मैं भी जब आया था तब यही बात हुई थी। मुझसे कहा चुप हो जाओ मैं चुप हो गया। साल भर बाद मुझसे कहने लगे, पूछो, मैं क्या खाक पूछता, बात खत्म हो गई। मैंने पूछा नहीं और मुझसे कहने लगे पूछो। मैं क्या पूछता? पूछना ही खत्म हो गया। और यहां और बहुत लोग हैं जो इसी तरह पूछते आए हैं और चुप हो गए, वही धोखा तुम्हें दिया जा रहा है।

बुद्ध ने कहा कि मैं वायदे पर पक्का रहूंगा, तुम ही बदल जाओ पूछने से तो बात दूसरी है। मैं जवाब दूंगा अगर तुम पूछोगे। वर्ष बीता और दस हजार भिक्षुओं के सामने बुद्ध ने उस युवक को खड़ा किया और कहा कि पूछ लो मौलुंकपुत, उसका नाम था, पूछ लो। वह हंसने लगा। उसने कहाः क्षमा करें, मुझसे भूल हो गई जो मैंने वर्ष भर पहले आपसे पूछा था। कैसा आपको लगा होगा मेरा पूछना, ऐसा ही लगा होगा जैसे सन्निपात में कोई आदमी बुखार में पड़ा हुआ पूछता है कि मेरी खाट पूरब उड़ रही है कि पश्चिम उड़ रही है, मेरी खाट कहां जा रही है? घर के लोग कहते हैं कि चुप रहो जब ठीक हो जाओगे तब समझा देंगे। अगर घर में कोई आदमी इसका उत्तर दे कि नहीं पूरब नहीं पश्चिम उड़ रही है, तो वह पागल है। यह तो सन्निपात में है, वह पागल है जो उत्तर दे इसका। घर के समझदार लोग कहेंगे तुम चुप रहो हम वैद्य को बुलाते हैं तुम्हारा इलाज करते हैं। वह आदमी कहेगा, इलाज का सवाल नहीं है मैं पूछता हूं खाट कहां जा रही है पश्चिम कि पूरब? घर के लोग कहेंगे तुम ठहरो सुबह हो जाने दो, तुम जरा ठीक हो जाओ फिर तुम पूछना, हम उत्तर देंगे।

उस मौलुंकपुत ने कहाः आपने समझा होगा कि मैं सन्निपात में हूं। मैं सन्निपात में था क्योंकि मैं उस प्रश्न को पूछ रहा हूं जो न पूछा जा सकता। मैं उस प्रश्न को पूछ रहा हूं जो वस्तुतः प्रश्न ही नहीं है। मैंने अपनी तरफ आंख ही नहीं फेरी इसलिए वह प्रश्न बन गया, मैं आंख फेर लूं वह प्रश्न विलीन हो जाएगा। वह प्रश्न झूठा है। वह प्रश्न मेरी पीठ की वजह से पैदा हो गया है। जैसे कोई आदमी घर में पूछे कि अंधेरा कहां है और हम उसे एक दीया दे दें और कहें कि यह दीया ले जाओ और घर में खोजो कि अंधेरा कहां है। वह दीया लेकर जाए और घर में खोजे और अंधेरा न मिले। वह आदमी लौट कर कहे कि बड़ी मुश्किल है, मैं दीया लेकर गया, अंधेरा कहीं मिलता नहीं है। असल में अंधेरा था, क्योंकि वहां दीया नहीं था। दीया लेकर कोई गया अंधेरा वहां नहीं रह जाएगा।

हमने कभी अपनी तरफ ध्यान ही नहीं किया है, बस इतना ही प्रश्न है। हम हैं, हम सदा से हैं, हम जानते हैं कि कौन हैं क्योंकि यह असंभव है कि हम न जानते हों कि हम कौन हैं। हम भलीभांति जानते हैं कि हम कौन हैं लेकिन हमने उस तरफ ध्यान देना ही बंद कर दिया है। और स्मरण रहे, हमें उसी का पता चलता है जिस तरफ हमारे ध्यान का फोकस होता है।

एक लड़का हाकी खेल रहा है मैदान पर, पैर में चोट लग गई है, खून बह रहा है, सारे हजारों लोग चारों तरफ देख रहे हैं, उन्हें दिखाई पड़ रहा है कि अंगूठा टूट गया है, नाखून टूट गया, खून बह रहा है, लेकिन उस खेलने वाले को कोई पता नहीं है। घड़ी भर बाद खेल खत्म होता है और सारा दर्द एकदम से पैर पर टूट पड़ता है, वह कहता है, ओह! मुझे कब चोट लग गई? कब खून बह रहा है? लोग कहते हैं कि घंटा भर हो गया तब से खून बह रहा है। लेकिन वह कहता है कि मुझे पता ही नहीं।

उसके सारे ध्यान का फोकस, उसका सारा ध्यान खेलने में है। अंगूठे तक ध्यान के जाने की जरा सी भी धारा शेष नहीं रह गई। सारा ध्यान, सारा ध्यान खेल पर लगा हुआ है, अंगूठा टूट गया उसे पता नहीं चलता।

काशी में नरेश थे, उन्नीस सौ ग्यारह में उनका ऑपरेशन हुआ। वे किसी तरह की दवा लेना पसंद नहीं करते थे। तो उन्होंने एनस्थेसिया लेने से भी इनकार कर दिया। उन्होंने कहाः बेहोशी की कोई दवा नहीं लूंगा। जिस डाक्टर ने ऑपरेशन किया उसने कहाः तब तो बड़ा मुश्किल है, ऑपरेशन में आधा घंटा लग जाने को है। आधे घंटे तक बिना बेहोश किए आपरेशन करना एकदम खतरनाक है। उन्होंने कहा कि नहीं, आप ऑपरेशन करें, मैं तब तक गीता पढ़ता रहूंगा। पर उन्होंने कहाः गीता पढ़ने से क्या होगा? उन्होंने कहाः नहीं, आप चिंता न करें, मैं गीता पढूंगा आप ऑपरेशन करें। वह ऑपरेशन हुआ। वह दुनिया में पहला ऑपरेशन था कि किसी आदमी ने किताब पढ़ते वक्त ऑपरेशन करवा दिया। वे आधे घंटे तक गीता पढ़ते रहे और ऑपरेशन हो गया। डाक्टर तो चकित रह गए। दस डाक्टर इकट्ठे थे, नरेश का ऑपरेशन था। उन दसों ने लिखा है प्रमाणपत्र में कि यह चमत्कार है। वे नरेश से पूछने लगे कि यह कैसे कर रहे हो, यह कैसे हुआ? उन्होंने कहाः करने का इसमें कुछ भी नहीं है, जब मैं गीता पढ़ता हूं तो पूरा ही पढ़ता हूं, फिर यहां कुछ बाकी नहीं बचता यहां-वहां जाने को। फोकस टोटल, मैं पूरा का पूरा गीता पर ही चला जाता हूं। जब मैं पढ़ता हूं तो पूरा पढ़ता हूं, नहीं तो पढ़ता ही नहीं।

इसका मतलब आप समझ रहे हैं? अगर पूरा का पूरा ध्यान गीता पर चला गया हो, तो पैर कट जाए, पता नहीं चलेगा। वही खेल के मैदान में लड़का भी जानता है कि चोट लग जाए पता नहीं चलता है। इसका यह मतलब हुआ क्या पैर नहीं है जो पता नहीं चल रहा? क्या चोट नहीं है जो पता नहीं चल रहा है? चोट भी है, पैर भी है, और पैर खबर भी भेज रहा होगा, तड़प भी रहा होगा, लेकिन चेतना कहीं और है।

मैं कौन हूं? यह सवाल सिर्फ इसलिए पैदा हुआ है कि हमारी चेतना कहीं और है--दुकान में है, बाजार में है, धन में है, मकान में है, पत्नी में है, बच्चे में है, कहीं और है। सब तरफ फैल गई है। उसका फोकस सारी तरफ सिर्फ एक जगह को छोड़ कर वह जहां मैं हूं। बस वहां उसका कोई फोकस नहीं है। और धीरे-धीरे जन्मों-जन्मों वह फोकस फिक्स्ड हो गया है। अब वह पीछे की तरफ लौटता भी नहीं। अब लौटाने की भी कोशिश करो तो कुछ नहीं होता। ऐसा लगता है कि कहां जाएं, कहां जाएं, कहां देखें मैं कौन हूं? कहां जाएं? वह हमारा सवाल जो है तो कोई मेटाफिजिकली सवाल नहीं है यह। इसलिए मैंने कहा यह सवाल नहीं है, यह सवाल ऐसा नहीं है कि दो और दो कितने होते हैं। यह सवाल ऐसा नहीं है कि टिम्बकटू कहां है। यह सवाल ऐसा नहीं है कि जमीन और चांद के बीच कितना फासला है। यह सवाल ऐसा नहीं है कि हाइड्रोजन में कितने एटम होते हैं। यह सवाल नहीं है इस तरह का जिसको कहीं जांच-पड़ताल करने से कोई उत्तर मिल जाएगा। सच बात यह है कि यह केवल इनअटेंशन से पैदा हुआ सवाल है। यह सवाल कोई वास्तविक सवाल नहीं है, यह सिर्फ ध्यान के अभाव से पैदा हुआ सवाल है। यह सवाल बिल्कुल झूठा है, सुडो प्रॉब्लम है, मिथ्या सवाल है। और जो सवाल मिथ्या होता है वह बहुत खतरनाक होता है। क्योंकि अगर आप उसका जवाब ले आए तो बहुत मुश्किल में पड़ जाएंगे। क्योंकि जो सवाल ही नहीं था उसका जवाब तो गलत होने ही वाला है। इसलिए मैं कौन हूं, इसके जितने जवाब दिए गए हैं सब गलत हैं। बिना जाने कहता हूं कि कौन सा जवाब है, जो भी जवाब होगा गलत होगा, क्योंकि यह सवाल ही गलत है। यह सवाल जिसको हम प्रश्न कहते हैं वह नहीं है, यह सवाल केवल ध्यान का एक जगह से हट जाना है।

तो अब क्या करें? पूछते हैं आप कि मैं कौन हूं?

तो एक ही रास्ता है पूछें मत और ध्यान को और सब जगह से हटा कर वहां ले आएं जहां आप हैं। कहीं तो आप हैं, कहीं आप बैठे हैं। यहां बाहर भी कहीं आप बैठे हैं। अगर मैं पूछूं कि आप कहां हैं, तो आप बता सकेंगे कि मैं फलां खंभे के पास बैठा हुआ हूं। यह इस बड़ी जगह में आपने लोकेट किया कि यहां मैं हूं। अब इस बड़ी जगह को भूल जाएं। फिर एक छोटी जगह आपके शरीर की पांच फीट की, फिर वहां खोजें कि मैं कहां हूं, फिर लोकेट करें कि यहां मैं हूं। अगर कोई आपसे कहे कि आपके पैर को काट दें, तो आप कट जाओगे? शायद आप कहोगे कि पैर के काटने से मैं कटने वाला नहीं हूं। इसका मतलब हुआ कि पैर को अलग किया जा सकता है और आप होओगे।

तो अपने भीतर खोजें कि क्या-क्या अलग किया जा सकता है और मैं रहूंगा। तब आप अपने भीतर वह बिंदु खोज लेंगे कि यहां मैं हूं और इस तरह खोजते चले जाएं, छीलते चले जाएं जैसे कोई प्याज को छीलता हो और एक-एक पर्त उखाड़ता चला जाए और कह दे कि यह भी ऊपर का छिलका है इसको भी फेंक दें, हम तो और भीतर जाते हैं, और भीतर जाते हैं, और भीतर जाते हैं। एक-एक चीज जो आप छोड़ सकते हैं जो नॉन-एसेंशियल मालूम पड़े। अगर आपकी आंखें चली जाएं तो आप खो जाओगे? आप कहोगे कि मैं अंधा हो जाऊंगा लेकिन फिर भी मैं रहूंगा। इसका मतलब यह हुआ कि आंखों के भीतर से कोई झांकता था जो आंख नहीं था। आंख बंद हो गई, खिड़की बंद हो गई, झांकना मुश्किल हो गया लेकिन झांकने वाला भीतर मौजूद है। मैं एक मकान के भीतर बैठा हुआ हूं और उसकी खिड़की में से आपको देख रहा हूं, खिड़की आपने बंद कर दी तो मैं मिट गया। खिड़की बंद हो गई अब मैं आपको नहीं देख पाता हूं, क्योंकि बीच में एक बाधा आ गई। लेकिन मैं मकान के भीतर हूं।

एक-एक इंद्रीय पर सोचें कि यह अगर मिट जाए तो मैं रहूंगा? और आप पाएंगे कि सारी इंद्रियां मिट जाएं तो भी आपके होने में रत्ती भर फर्क नहीं पड़ता। आपका जो एसेंशियल एक्झिस्टेंस है वह कायम है। इसका मतलब यह हुआ कि पूरा शरीर खो जाए तो आप नहीं खोते, आप हैं, इस भांति खोजने का नाम ध्यान को स्वयं पर ले जाना है। वह जो इनअटेंशन पैदा हो गई है, वह जो गैर-ध्यान पैदा हो गया है, वह धीरे-धीरे टूटता चला जाएगा और आप उस जगह पहुंच जाएंगे, उस बिंदु पर, उस अल्टीमेट पॉइंट पर, जहां खड़े होते ही वह अंधकार मिट जाता है जो वस्तुतः था नहीं, सिर्फ आपकी गैर-मौजूदगी के कारण पैदा हो गया। उस बिंदु पर खड़े होते ही उसका पता चल जाता है जो आप हैं। और यह बड़े मजे की बात है, जिस दिन यह पता चलता है कि कौन हैं आप, उस दिन बहुत हंसी आती है, क्योंकि उस दिन यह भी पता चलता है कि आप ही आप हैं और कुछ है ही नहीं। और जो भी आपको दिखाई पड़ रहे हैं चारों तरफ जो विस्तार वह आपके ही बिंदु का विस्तार है। वह आपसे ही जुड़ा है। एक ही सागर अनंत-अनंत लहरों में स्पंदित हो रहा है। लहर पूछने जाए कि कौन हूं मैं, अपने भीतर घुसे सागर में पहुंच जाएगी। कोई लहर पूछे कि कौन हूं मैं, भीतर जाए, फौरन सागर में पहुंच जाएगी। हंसेगी, कहेगी, लहर तो नहीं हूं।

इसलिए एक बात आपसे कहना चाहता हूं, जब आप खोजने चलेंगे कि मैं कौन हूं, तो जो-जो आपने समझा हुआ है कि मैं यह-यह हूं, कम से कम इतना निश्चित कहा जा सकता है कि वह कोई भी आप अपने को नहीं पाएंगे कि यह-यह मैं हूं। जो-जो आपने समझा है कि मैं यह हूं वह तो निश्चित आप नहीं पाएंगे। वह तो आप हैं ही नहीं। जिस दिन आपको पता चलेगा कौन हूं मैं, उस दिन आप यह नहीं कह सकेंगे कि मैं यह हूं। उस दिन आप कहेंगे कि मैं कहां नहीं हूं। उस दिन यह सवाल नहीं है कि मैं कहां हूं, उस दिन यह सवाल है मैं कहां नहीं हूं।

उस दिन यह सवाल नहीं है कि मैं अपने को कहां खोजूं। उस दिन यह सवाल होगा कि मैं अगर अपने से बचना चाहूं तो कहां बचूं, सब तरफ मैं हूं।

एक फकीर था, उसने अपने शिष्यों को कहाः ऐसी जगह खोजो, दो शिष्य हैं, दोनों को कहा, ऐसी जगह जाओ, एक-एक कबूतर दे दिया और कहा कि ऐसी जगह जाओ जहां कोई न हो, जहां कोई न देखता हो, वहां तुम कबूतर को मार डालो। वह एक शिष्य लेकर कबूतर को गया, रात पड़ गई, अंधेरा हो गया, उसने कहा, बस ठीक है, एक गुफा में चला गया। वहां कोई नहीं दिखाई पड़ता था, उसने कबूतर को मार डाला। दूसरा शिष्य कई महीनों तक भी नहीं लौटा। वह तो शिष्य मार कर कबूतर को आ गया और उसने कहा कि मैंने तो खतम कर दिया, अंधेरे में गया वहां कोई भी नहीं था, बस मैंने कबूतर मार डाला।

उस फकीर ने कहाः तुमको नमस्कार, अब तुम कभी इस द्वार पर वापस मत आना।

उस शिष्य ने कहाः क्या मतलब, बात खतम हो गई?

उस फकीर ने कहाः अब आगे अपना कोई नाता-रिश्ता नहीं है। पर उसने कहा, मैं तो कबूतर आपने कहा था कि मार कर ले आना, तो मार कर ले आया हूं और ऐसी जगह जहां कोई भी नहीं था।

फकीर ने कहाः बस बात ही खतम हो गई। अब तुम यहां दरवाजे पर लौटना ही मत।

पर वह दूसरा आदमी कहां है? और फकीर उसे ढूंढवाता रहा। छह महीने बीत गए बमुश्किल वह पकड़ा जा सका। उस आदमी को पकड़ कर लाया गया। उसकी हालत खराब हो गई थी। कबूतर को सम्हाले-सम्हाले वह न मालूम कहां-कहां भटक चुका था। उसके गुरु ने पूछाः क्या हुआ, अब तक जगह नहीं खोज पाए? उसने कहाः जगह खोज नहीं पाया। मामला ही बदल गया। अंधेरी जगह में गया, बिल्कुल अंधेरी रात थी तो भी ऊपर से चांद-तारे थे, तो मैंने सोचा चांद-तारों की रोशनी तो पड़ती ही है, यहां ठीक नहीं, और अंधेरे में जाऊं, तो जमीन की गुफा में गया, वहां जाकर कबूतर की गर्दन दबा रहा था कि कबूतर की दोनों आंखे चमक रही थीं और मुझे देख रही थीं। यह तो मुश्किल मामला हो गया। फिर मैंने सोचा कि कबूतर की आंख बंद कर दो। कबूतर की आंख पर पट्टी बांध दी। अंधेरी गुहा में गया कबूतर की गर्दन दबाने को था कि तब मुझे पता चला कि मैं तो जान ही रहा हूं, मैं तो देख ही रहा हूं। अब क्या करूं? छह महीने हो गए, परेशान हो गया, यह कबूतर सम्हालो।

उसके गुरु ने कहाः रुको, तुम ठहरो। उसने कहाः अब रुकने और ठहरने की कोई जरूरत भी न रही। उसके गुरु ने कहा कि तुम योग्य हो, तुम्हें मैं अपने पास रखूंगा, इसी की परीक्षा के लिए तुम्हें भेजा था। तुम्हारे दूसरे साथी को भगा दिया गया। उसने कहाः दूसरे साथी को आपने भगा दिया, मैं अपनी तरफ से नमस्कार करता हूं, क्योंकि अब मुझे कोई जरूरत न रही। इस कबूतर को मारने के लिए और एकांत खोजने में मैं ऐसी जगह पहुंच गया जहां अकेला मैं ही बचा। लेकिन मैं बचा और जैसे ही अकेला मैं बचा मुझे पहली दफा उसका ध्यान आया कि अरे, "यह हूं मैं" और तब एक क्षण में कबूतर भी मैं ही हो गया और सब कुछ मैं हो गया। अब किससे पूछना है, अब किससे जानना है, अब किससे सीखना है, क्या सीखना है, बात खतम हो गई। नमस्कार करता हूं।

उसके गुरु ने लिखा है कि दो आदमी आए। एक को इसलिए भगा दिया कि वह योग्य न था। एक इसलिए चला गया कि वह योग्य था। इसलिए गुरु हमेशा खाली रह जाते हैं। अयोग्य जिद करते हैं कि हम रुकेंगे, अयोग्यों को वे रोकना नहीं चाहते। योग्य कहते हैं, बस ठीक है, कृपा, हम जाएं। योग्य रुकना नहीं चाहते। बात खतम हो जाती है।

वह जैसे ही आप ध्यान को, अटेंशन को, उसको वह जो हमारा बोध है सब तरफ से लौटा कर वहां ले जाएंगे जहां अकेले आप ही हैं, और भीतर, और भीतर, जिसको भी छोड़ सकते हैं छोड़ते जाएंगे, कहते जाएंगे

नेति-नेति, नॉट दिस, नॉट दैट, यह भी नहीं, यह भी नहीं, और जहां जाकर कुछ कहने को नहीं रह जाएगा, वह बारीक जगह आएगी, वह बारीक जगह जहां एक्सप्लोजन होता है, जहां विपलव हो जाता है, विस्फोट हो जाता है और एक क्षण में सब चीजें बदल जाती हैं, सब कुछ नया हो जाता है।

मैं कौन हूं? यह कोई मेटाफिजिकल क्वेश्चन, यह कोई दार्शनिक प्रश्न नहीं है। यह आध्यात्मिक परिस्थिति है, यह सिचुएशन है, यह क्वेश्चन नहीं है। यह हम पूछते हैं इससे पता चलता है कि हम सोए हुए हैं और हम कहीं और भटक रहे हैं। हमारा ध्यान वहां नहीं है जहां हमारा होना है और हमारा ध्यान वहां है जहां हमारा होना नहीं है। इन दोनों के बीच एक गल्फ, एक खाई पैदा हो गई है। उस खाई को जो पूरा कर लेता है वह जान लेता है कौन हूं। और जो जान लेता है कौन हूं फिर उसे कुछ और जानने को और पाने को शेष नहीं रह जाता है। और जो जान लेता है कौन हूं, उसके जीवन में न प्रश्न रह जाते हैं, न चिंताएं रह जाती हैं, उसके जीवन में न तनाव रह जाते हैं, उसके जीवन में कुछ भी शेष नहीं रह जाता। वह ऐसे हो जाता है जैसे हवाएं, जैसे आकाश में तैरते हुए बादल, जैसे वृक्षों पर खिलते फूल, जैसे वृक्षों से गिरते सूखे पत्ते, जो होता है वह जानता है। फिर उसका न कोई इनकार है कि यह हो, न उसका कोई आग्रह है कि यह हो, न उसका कोई आग्रह है कि यह न हो, फिर सब चीजें स्वीकृत हैं। फिर जो होता है वह देखता रहता है। फिर जो नहीं होता है वह उसको भी स्वीकार कर लेता है। फिर वह जिंदगी में ऐसे जीता है जैसा लाओत्सु ने कहा है। किसी ने लाओत्सु से पूछा, उसी की बात से मैं... सिर्फ जीने के लिए तड़फता था। जीना-वीना कहां था, क्योंकि हमेशा लगता था कल जीऊंगा, परसों जीऊंगा, आगे जीऊंगा, भविष्य में जीऊंगा, मोक्ष में जीऊंगा, स्वर्ग में जीऊंगा, हमेशा कल, हमेशा कल, हमेशा कल। जीता नहीं था तड़फता था, और तड़फता इसीलिए था कि जीवन का कोई पता नहीं था। जिस दिन से जाना उस दिन से जी रहा हूं। उस दिन से तड़प नहीं रहा हूं।

ध्यान रहे, जो तड़फते हैं वे कभी जीते नहीं और जो जीते हैं वे कभी तड़फते नहीं। ये दोनों बातें एक साथ नहीं होती हैं। अगर थोड़ी भी तड़प है भीतर, उसका मतलब है जीवन नहीं है। अगर जीवन है तो एक अपूर्व शांति छा जाएगी जहां कोई तड़प नहीं है।

लाओत्सु से पूछा, फिर अब तुम कैसे जीते हो? उसने कहाः कैसे का सवाल नहीं रहा, क्योंकि कैसे का मतलब था कि मेरा कोई आग्रह था कि ऐसे जीऊंगा। नहीं, अब तो जब भूख लगती है लग आती है और जब नींद आती है तब आ जाती है। जब नींद आती है तब सो जाता हूं, जब भूख लगती है तब खा लेता हूं, जब प्यास लगती है पी लेता हूं। अब अपनी तरफ से कुछ करता ही नहीं हूं। अब जो होता है होता रहता है।

उस आदमी ने कहाः लेकिन यह तो हम भी करते हैं। जब भूख लगती है तब खाते हैं। लाओत्सु ने कहाः इस भूल में मत रहना। ऐसे आदमी जमीन पर खोजने मुश्किल हैं जो जब खाते हों जब भूख लगती है और ऐसे आदमी भी खोजने मुश्किल हैं जो जब सो जाते हों जब नींद आती है। छोटे-छोटे बच्चों को छोड़ दें, बस। हम तब सोते हैं जब सोने का वक्त है और हम तब खाते हैं जब खाने का वक्त है। और हम इसलिए नहीं खाते कि भूख है, हम इसलिए खाते हैं कि स्वाद है। और हम इसलिए नहीं सो जाते कि नींद है, हम इसलिए सो जाते हैं कि रात है।

लाओत्सु ने कहाः तुम इस भूल में मत रहना, और मैं तुमसे कहता हूं कि जब मैं खाता हूं तब मैं सिर्फ खाता हूं और जब मैं सोता हूं तो मैं सिर्फ सोता हूं। उस आदमी ने कहाः यह तो हम भी करते हैं। लाओत्सु ने कहाः इस भूल में मत पड़ना। तुम खाते हो और साठ हजार काम और भी करते हो। तुम सोते हो और हजार

सपने देखते हो। तुम खाना खाते हो और दफ्तर में भी बैठते हो। उसी वक्त एक साथ तुम बहुत जगह होते हो। मैं वहीं होता हूं जहां होता हूं।

तो उस आदमी ने पूछाः फिर हमें ठीक से समझा दो कि हम कैसे जीएं, क्या करें?

लाओत्सु ने कहाः मुझसे पूछते हो तो मुझे एक ही बात खयाल आती है, जब से मैंने जाना तब से मैं एक सूखे पत्ते की तरह हो गया हूं, जो वृक्ष से गिर चुका है। हवाएं आती हैं और पूरब की तरफ ले जाती हैं तो मैं पूरब की तरफ चला जाता हूं। मैं हवाओं से यह नहीं कहता कि मैं नहीं जाऊंगा, मुझे पश्चिम जाना है। मुझे कहीं जाना ही नहीं है। क्योंकि मैं वहां पहुंच गया हूं जिसके आगे कोई जाना नहीं है। हवाएं पश्चिम ले जाती हैं मैं हवाओं पर सवार हो जाता हूं, पश्चिम चला जाता हूं। हवाएं आकाश में उठा देती हैं तो मैं आकाश में नाचता हूं सूरज की किरणों में। और हवाएं जमीन पर गिरा देती हैं तो मैं सो जाता हूं, विश्राम करता हूं। मैं एक सूखा पत्ता हो गया हूं, हवाएं जहां ले जाती हैं वहीं चला जाता हूं, नहीं ले जाती हैं तो नहीं जाता हूं। न मेरी जाने की कोई इच्छा है और न न जाने का कोई सवाल है। अब मेरी कोई दौड़ नहीं, मैं सिर्फ हूं और जो होता है उसे देखता रहता हूं।

जो व्यक्ति इस मैं के रहस्य को खोल लेगा वह जीवन के साथ एक हो जाता है। वह वैसे हो जाता है जैसे झरने, वह वैसे ही हो जाता है जैसे आकाश में तैरते हुए बादल, वह वैसे ही हो जाता है जैसे फूल, जैसे पक्षी, वह वैसे ही हो जाता है जैसे चलती हुई श्वास। वह जीवन के साथ एक हो जाता है, सब चीजें ठहर जाती हैं। ठहरने का मतलब मर नहीं जाती हैं। सब चीजें ठहर जाती हैं जैसे कोई शांत सरोवर ठहरा हो। पूरा जीवन, पूरी शक्ति से भरा हो लेकिन ठहरा हो। ऐसे ठहरे हुए जीवन की दशा में जहां पूरा जीवन है और जहां ठहरे हुए भी अगति नहीं है और जहां ठहरे हुए भी मृत्यु नहीं है, और जहां ठहरे हुए भी सब गति है, सब परिवर्तन है, सब हो रहा है लेकिन कोई आग्रह नहीं है। ऐसी चित्त-दशा में जो फलित होता है उसका नाम आनंद है और इससे विपरीत चित्त-दशा में जहां हम हैं जो फलित होता है उसका नाम दुख है।

हम दुख के बिंदु पर खड़े हैं क्योंकि हमें पता ही नहीं हम कौन हैं। हम आनंद की मंजिल पर पहुंच सकते हैं काश हमें पता हो जाए कि हम कौन हैं। दुख और आनंद के बीच की जो यात्रा है वह मैं कौन हूं इसे न जानने से, मैं कौन हूं इसके जानने तक की यात्रा का नाम है। और कहीं कोई मंदिर नहीं है, और कहीं कोई परमात्मा नहीं है, और कहीं कोई मोक्ष नहीं है।

दुख से आनंद की तरफ बढ़ जाना परमात्मा की तरफ बढ़ जाना है। दुख से आनंद की तरफ बढ़ जाना मुक्ति की तरफ बढ़ जाना है। दुख से आनंद की तरफ बढ़ जाना सत्य की तरफ बढ़ जाना है। लेकिन जिसे अपना ही पता नहीं उसे क्या आनंद का पता हो सकता है? इसलिए मैं कौन हूं? इसको कोई दार्शनिक सवाल मत समझना और इसके उत्तर खोजने किसी किताब में मत चले जाना। इसका उत्तर खोजना हो तो अपने ध्यान को जो चारों तरफ फैला है उसे सिकोड़ कर वापस बुला लेना। होम कमिंग, वह वापस लौटना है। जैसे सांझ पक्षी लौटते हैं। सारे पक्षी लौटने लगते हैं सांझ अपने घोंसलों को। ऐसे ही आध्यात्मिक व्यक्ति अपनी चेतना की किरणों को, चेतना के पक्षियों को जो सब तरफ उड़ गए हैं उन्हें वापस बुलाने लगता है। वे सब अपने घर जिस दिन वापस लौट आते हैं और सारी चेतना जिस दिन भीतर बैठती है, जैसे कोई पक्षी अपने घोंसले में वापस बैठ गया आकर, उसी दिन उदघाटन हो जाता है। यह अटेंशन और इनअटेंशन के बीच का फासला है। यह एक प्रश्न और एक उत्तर के बीच का फासला नहीं है। वह जो इनअटेंशन है वह अटेंशन बन जाए और सारी बात पूरी हो जाती है। ध्यान के प्रति सोया हुआ आदमी अधार्मिक है। ध्यान के प्रति जागा हुआ आदमी धार्मिक है।

महावीर से किसी ने पूछा कि साधु कौन है? तो महावीर ने यह नहीं कहा कि जो मुंह में पट्टी बांधता है वह साधु है, इतनी तो महावीर को समझ रही होगी कि मुंह में पट्टी बांधना सर्कस हो सकता है, साधु होने से इसका क्या संबंध है। महावीर ने यह नहीं कहा कि जो नंगा खड़ा होता है वह साधु है। महावीर ने यह भी नहीं कहा कि जो उपवास करता हो वह साधु है। महावीर ने यह भी नहीं कहा कि जो इस ग्रंथ को मानता हो, उस ग्रंथ को मानता हो वह साधु है। महावीर ने बड़ी अजीब बात कही। महावीर ने दो छोटे से सत्य कहे। महावीर ने कहा कि जो जागता है सो साधु है, असुत्ता मुनि। जो जागा हुआ है सोया हुआ नहीं है वह मुनि है। फिर उसने पूछा, और असाधु कौन है? तो महावीर ने यह नहीं कहा कि जो दुकान करता हो वह असाधु है, कि जो पत्नी और बच्चों के पास रहता हो वह असाधु है, कि जो धन कमाता है वह असाधु है, कि जो मकान बनाता है वह असाधु है। नहीं, ये सब बातें नहीं कहीं। जब पूछा किसी ने असाधु कौन है? तो महावीर ने कहाः सुत्ता अमुनि, जो सोता है वह असाधु है। जो सोया है वह असाधु। जो सोया है, नहीं, जिसकी सारी चेतना की किरणें बाहर भटक गई हैं, जिसकी कोई चेतना की किरण भीतर नहीं लौटती जहां जागरण हो जाए। जागा है, वह साधु है।

जाग जाएं तो पता चलेगा कि मैं कौन हूं? सोए रहें, पता है और पता नहीं चलेगा। "हैं" और पता नहीं चलेगा।

इसलिए मैंने कहा, सरल है और कठिन भी। चाहें तो आज भी हो सकता है, न चाहें अनंत जन्मों तक नहीं होगा, अनंत जन्मों तक नहीं होगा।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, इससे मैं बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को मैं प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

तीसरा प्रवचन

असंग की खोज

एक तो संगठनों पर मेरी कोई भी आस्था नही है, क्योंकि संगठन सभी अंततः खतरनाक सिद्ध होते हैं। और सभी संगठन अनिवार्यरूपेण संप्रदाय बनते हैं। तो एक तो संगठन कोई नहीं बनाना है। जीवन जागृति केंद्र एक बिल्कुल मित्रों के मिलने का स्थल भर है, कोई संगठन नहीं है। ऐसा कोई संगठन नहीं है कि उसकी सदस्यता से कोई बंधता हो। न ऐसा कोई संगठन कि वह कोई किसी विशेष विचारधारा को मान कर उसका अनुयायी बनता हो।

अगर ठीक से मेरी बात समझें, तो मैं किसी विचार को नहीं फैलाना चाहता, विचार करने की प्रक्रिया को भर फैलाना चाहता हूं। यानी मैं कोई आइडियालॉजी या कोई सिद्धांत नहीं देना चाहता किसी को। लेकिन प्रत्येक व्यक्ति सोचने-समझने, स्वयं सोचने-समझने में कैसे समर्थ हो, इसकी व्यवस्था देना चाहता हूं।

दूसरे जो संगठन हैं, मिशन हैं, उनकी नजर बिल्कुल दूसरी है। उनकी नजर यह है कि वे कोई विचार आपके दिमागों में डालना चाहते हैं। तो एक तो सबसे पहले यह स्पष्ट होना चाहिए कि न कोई संप्रदाय, न कोई संगठन। बस कुछ मित्रों को यह ठीक लगता है कि समाज में, देश में सोच-विचार की क्रांति हो, प्रत्येक व्यक्ति सोचने लगे और सोचने में जो बाधाएं हैं वे दूर हो सकें। फिर वह क्या सोचे, और उसका सोचना उसे कहां ले जाए, इस सबके लिए हम कोई उसको बांधने की चेष्टा में नहीं हैं।

मेरी समझ यह है कि अगर सम्यक चिंतन शुरू हो, तो आदमी वहीं पहुंचेगा जहां सत्य है। पुराने सारे संप्रदाय यह कोशिश करते रहे हैं, सारे संगठन, कि आदमी में सोचना पैदा न हो पाए, वे जो बताते हैं वह उसमें बैठ जाए। और उनको यह डर भी रहा है कि अगर उसने सोचा, तो हो सकता है जो हम बताते हैं वह उससे राजी न हो।

तो जो लोग भी कोई आइडियालॉजी देना चाहते हैं समाज को, कोई सिद्धांत देना चाहते हैं, वे हमेशा विचारने के दुश्मन होंगे। क्योंकि उनको हमेशा डर होगा कि विचार कहीं ऐसा न हो कि यह सिद्धांत के विपरीत पड़ने लगे। इसलिए मैं तो कोई सिद्धांत देना ही नहीं चाहता। मैं तो कैसे प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन के सिद्धांत को खोज सके, उसकी प्रक्रिया उसे कैसे साफ हो सके। फिर जहां उसकी प्रक्रिया उसे ले जाए वह जाए, हमारा कोई आग्रह नहीं कि वह यहां जाए, यहां जाए, यह बने, यह हो, इसका सवाल नहीं है। लेकिन वह स्वतंत्र चेतना उसके भीतर जन्म जाए, इतनी हमारी फिकर है। अगर यह खयाल में आ गया, तो जीवन जागृति केंद्र कोई संगठन नहीं है, यह तो पहले समझ में आ जाना चाहिए, सिर्फ मित्रों का एक मिलन-स्थल है। इसलिए उसमें वे लोग भी आ सकते हैं जो मेरे खिलाफ सोचते हों, बस सोचते हों, इतना काफी है। वह कोई, कोई मेरे पक्ष में सोचना चाहिए यह आग्रह उसमें नहीं हो सकता। यही आग्रह संप्रदाय बनाता है कि हमारे जो पक्ष में हैं वे इकट्ठे हो जाएं, फिर जो विपक्ष में हैं वे विपक्ष में इकट्ठे हो जाएं, और फिर उपद्रव शुरू गया। मेरे विरोध में भी कोई सोचता हो, बस सोचता हो, उसका स्वागत है, वह इस मित्रों के मिलन का हिस्सा बन सकता है। इसलिए सबके लिए खुले द्वार उसके होने चाहिए।

फिर वहां क्या करिएगा? काम कठिन हो गया। क्योंकि अगर एक सिद्धांत लोगों के दिमाग में डालना हो तो काम बहुत सरल है। मेरा काम कठिन है थोड़ा। इसलिए अगर पांच साल से गांव-गांव में भटकता हूं, लेकिन

वह जो मैं चाहता हूं वह नहीं हो पाता। क्योंकि अगर होगा तो लोग उसको उस तरह का बनाने की कोशिश में पड़ जाते हैं फौरन। और वह मैं चाहता नहीं हूं। इसलिए थोड़ा सा नाजुक सवाल है। और वह नाजुक सवाल यह है कि जो लोग इकट्ठे होंगे वे लोग क्या करें इकट्ठे होकर? अगर कोई झंडा गाड़ना हो इसलाम का या कोई जैन धर्म का या मुसलमान धर्म का या कम्युनिज्म का, तो बहुत आसान मामला है, लोग इकट्ठे हो जाएंगे। यहां कोई झंडा गाड़ना नहीं है, जितने गड़े हुए झंडे हैं सब उखाड़ देने हैं और अपना कोई गाड़ना नहीं है। यह थोड़ा मामला मुश्किल का है। लेकिन वह अगर खयाल में आ जाए... झंझट में पड़ जाओगे। मेरा मतलब समझ रहे न?

इस मामले में मेरी दृष्टि यह है कि एक-एक व्यक्ति अनूठा जीवन है। और जो उसके भीतर होगा वह कभी किसी के भीतर नहीं हुआ है, और न कभी किसी के भीतर हो सकता है। लेकिन अब तक का जो मामला था वह अजीब था, वह यह था कि एक आदमी तय करता है कि यह जो हुआ है यही सबके भीतर होना चाहिए। और जो उसके भीतर हुआ, वह बेचारा उसको आइडियल बना देता है, आदर्श बना देता है। और हजारों लोग वैसा होने की कोशिश करने लगते हैं।

यह कोशिश इतनी बड़ी हिंसा है जिसका कोई हिसाब लगाना मुश्किल है। यानी गुरुओं ने जितनी बड़ी हिंसा की और किसी ने कभी भी नहीं की। ये हिटलर और चंगीज खान इसके मुकाबले में कुछ हिंसक नहीं हैं। क्योंकि गुरु यह कोशिश करता है कि एक उसने ढांचा दे दिया है, एक पैटर्न, कि अब तुम इसमें ढल जाओ। और ढल गए तो सफल, नहीं ढले तो गए। अब तुम उस पैटर्न में ढलने की कोशिश कर रहे हो कि यह तुम्हारा जीवन का लक्ष्य हो गया। और तुम जीवन की अलग ही किरण थे। और तुम्हारा अपना ही रास्ता होने का था। और तुम अपने ही रास्ते पर गए होते तो ही आनंदित हो सकते थे। क्योंकि आनंद का एक ही मतलब है, तुम्हारा जीवन जो हो सकता है अगर हो जाए तो आनंद मिलेगा और तुम्हारा जीवन जो हो सकता है अगर न हो पाए तो तुम दुखी रहोगे। और तुम्हारा जीवन वही हो सकता है जो तुम हो। कोई दूसरा तुम्हारा जीवन नहीं हो सकता। अगर तुम महावीर बनने की कोशिश किए, तुम दुख में पड़ोगे। अगर तुम गांधी बनने की कोशिश किए, तुम दुख में पड़ने वाले हो। अगर तुमने कृष्ण बनने की कोशिश की, तुम झंझट में पड़े। क्योंकि यह जो बनने की कोशिश है न! और जब हम पूछते हैं और पूछते हम इसीलिए क्योंकि अब तक हमें इसी ढंग से सारा का सारा समझाया गया कि दूसरे से पूछ लो, कोई बता देगा कि जीवन का लक्ष्य क्या है।

मेरी अपनी समझ यह कहती है कि अनंत है जीवन और अनंत है लक्ष्य। मेरा मतलब समझ रहे न? अनंत है जीवन और अनंत है लक्ष्य। और प्रत्येक जीवन का अपना ही लक्ष्य है। और जब तक वह न मिल जाए तब तक बड़ी भटकन है, बड़ी बेचैनी है, बड़ी मुश्किल है। और वह तब तक नहीं मिलेगा जब तक किसी और जैसा जीवन बनाने की कोशिश की, वह मिल ही नहीं सकता। क्योंकि भटक गए तुम।

उन पूर्व-धारणाओं से मुक्त होने का क्या करें?

हां-हां, असल बात यह है कि जैसे ही तुम जान लो कि यह पूर्व-धारणा है, तुम मुक्त हो जाओगे। पूर्व-धारणा से मुक्त होने के लिए कुछ और नहीं करना होगा। जैसे एक आदमी को हम कहें कि दो और दो चार होते हैं, और वह कहे कि मैं तो अब तक मानता रहा कि दो और दो पांच होते हैं। अब मेरी समझ में आ गया कि दो और दो चार होते हैं। लेकिन दो और दो पांच होते हैं इसको मैं कैसे छोड़ूं? अब उससे क्या कहेंगे? उससे कहेंगे, तुम पागल हो गए, अब छोड़ने का सवाल कहां? अगर तुमको यह समझ में आ गया कि दो और दो चार होते हैं,

तो दो और दो पांच नहीं होते हैं, वे गए, खतम हो गई बात। वे तो तभी तक होते थे दो और दो पांच जब तक दो और दो चार नहीं होते थे। मेरा मतलब समझ रहे न? लेकिन वह आदमी पूछे कि आपकी बात तो समझ गए कि दो और दो चार होते हैं, अब यह बताइए कि वे दो और दो जो पांच होते थे उसको कैसे छोड़ें? उसे बताया जा सकता है। वह छूट जाना चाहिए, क्योंकि यह दूसरी बात जो समझ में आ गई न, तो गई वह।

कोई भी धारणा जो तुम पकड़े रहे हो, अगर उससे अन्यथा धारणा समझ में आ जाए, तो वह छूट गई। लेकिन तुम कहते हो वह भी अर्थपूर्ण है। उसमें अर्थ दूसरा है। असल पूर्व-धारणा में खतरा नहीं है, वह तो छूट जाए, लेकिन लोभ लगे हुए हैं पूर्व-धारणा के, वे लोभ नहीं छूटते। यह तो समझ में आ गया कि दो और दो चार होते हैं। लेकिन किसी ने कहा है कि अगर दो और दो पांच नहीं मानोगे तो नरक चले जाओगे। मैं दूसरी बात कह रहा हूं। किसी ने समझाया होगा कि दो और दो जो पांच मानता है तो स्वर्ग जाता है, और जो दो और दो पांच नहीं मानता वह नरक जाता है। अब तुम्हें समझ मैं तो आ गया कि दो और दो चार होते हैं, अब तुम कहते कैसे छोड़ें? अब यह धारणा का सवाल नहीं है। धारणा के पीछे कुछ और भी जुड़ा हुआ है जिसका सवाल आ गया। वह सवाल यह है कि दो और दो पांच वाले ने तो कहा था, स्वर्ग जाते हैं, आप कहते हैं कि दो और दो चार वाला स्वर्ग जाएगा। क्योंकि वह पहले में लोभ जुड़ा हुआ है। वह लोभ जान ले रहा है।

असली सवाल, यह सब देखने की जरूरत है अपने भीतर। एक बात मेरी समझ में आ आई कि गलत है फिर छूटती क्यों नहीं? नहीं छूटती, पीछे कोई लोभ है, कोई भय है, कोई प्रलोभन है, कोई और स्वार्थ है। और वह स्वार्थ कहता है कि पकड़े रहो, छोड़े तो मुश्किल में पड़ जाओगे। समझे न?

तो अब हमें उसकी जांच करनी पड़ेगी कि वह स्वार्थ क्या है? अगर तुमने स्वार्थ को पकड़ लिया, वह पकड़ नहीं पाओगे तब तक तुम मुश्किल में पड़ोगे, क्योंकि वह भीतर से काम कर रहा है। धारणा ऊपर है, स्वार्थ भीतर है। वह स्वार्थ अगर तुमने पकड़ लिया, तो ध्यान रहे, पकड़ते ही वह स्वार्थ भी विलीन हो जाने वाला है। क्योंकि सत्य से बड़ा कोई स्वार्थ नहीं है। किसी मनुष्य के लिए नहीं। लेकिन पकड़ में न आए तो मुश्किल है। अगर तुम एक बार पकड़ लो, तो सत्य से बड़ा कोई स्वार्थ है ही नहीं। इसलिए कोई भी स्वार्थ सत्य के सामने नहीं टिकता है। लेकिन न पकड़ो, और वह अनकांशस में, अंधेरे में बैठा हुआ काम करता रहे, तुम्हें पता ही नहीं चले, वहां से वह धागे खींचता रहे। तो यहां तुम सोचते रहो कि भई यह तो समझ में आ गया कि ठीक नहीं है, लेकिन वह छूटे कैसे? पीछे कोई और चीज पकड़े हुए है। उसकी खोज-बीन करनी चाहिए।

और मन के रास्ते बहुत सूक्ष्म हैं। जो चीज समझ में आ गई उसे छोड़ने की जरूरत ही नहीं है। उससे विपरीत छूट गई। लेकिन न छूटती हो तो सोचना कि यह मामला फिर धारणा का नहीं है अब, इसमें कुछ और लगाव भी पीछे जुड़े हुए हैं। और इतनी बात ध्यान रखना, कि असत्य से चाहे किसी ने कितने ही प्रलोभन दिए हों, कभी कोई हित उपलब्ध नहीं होता है। लेकिन हमारे डर और भी कई तरह के हैं। प्रलोभन भी हैं, भय भी हैं। बहुत तरह के भय हैं।

अब अभी एक घर में मैं ठहरा हुआ था। उस परिवार की लड़की मुझसे मिलने आई। और वह मुझसे कहने लगी कि आप कहते हैं कि बिना प्रेम के विवाह नहीं करना चाहिए। यह बात गलत है। क्योंकि मैंने तो बिना प्रेम के विवाह किया था और मेरा प्रेम पूरा है। मैंने कहाः अगर पूरा है, तो बात खतम हो गई, तू मेरी झंझट में क्यों पड़ती है? मुझसे पूछने क्यों आई हो? यानी मेरी बात ही थी, तेरा तो अनुभव है। मेरी तो बात ही थी। इसलिए एकदम ठीक है, खतम हो गई बात। नहीं, उसने कहा, नहीं, मुझे बात करनी है आपसे। मैंने कहाः बात करनी है तो मुझे लगता है कि तुझे कुछ डर है। घंटे भर उससे मैं बात किया। वह कहने लगी, आपकी बात तो समझ में आ

गई, लेकिन मन मानने का नहीं करता। मैंने कहाः मन मानने का नहीं करता क्योंकि मामले और उलझे हुए हैं। अब तुझे दिखाई पड़ रहा है कि तेरे पति से तेरा कोई प्रेम नहीं है, तुझे पूरी तरह दिखाई पड़ रहा है। लेकिन इसको तू देखना ही नहीं चाहती। क्योंकि यह देख कर बड़ा खतरा खड़ा हो जाएगा। यह तथ्य देखना बहुत खतरनाक हो जाएगा। क्योंकि फिर कुछ करना पड़ेगा। क्योंकि फिर क्या करोगे? और फिर समाज का इतना जाल और सारे उपद्रव हैं।

वह लड़की एकदम रोने लगी। जो इतनी तेजी से कह रही थी, वह एकदम रोने लगी। उसने कहा कि आप, आप आगे बात ही मत करिए। मैं तो इसीलिए लड़ने आई, लेकिन अब मेरे खयाल में आया, मुझे खयाल में ही नहीं था। मैं इसलिए लड़ने आई थी कि मैं किसी तरह आपके सामने यह सिद्ध कर दूं कि सिर्फ विवाह से भी प्रेम हो सकता है, तो निश्चिंत हो जाती। तेरे भीतर तो वही दिक्कत है कि प्रेम तो बिल्कुल नहीं है। लेकिन अब कोशिश करके मानना पड़ेगा कि प्रेम है; क्योंकि और कोई उपाय नहीं है।

अब वह प्रेम की बात लेकर आई थी, लेकिन वह प्रेम की बात सिद्धांत का मामला नहीं था उसके सामने। उसके सामने भीतर कुछ और मामला था। वह उस भीतर के मामले को... यहां कुछ दो-एक वर्ष हुए इंदौर से एक सज्जन जबलपुर गए। मुझसे कहा कि मैं ऋषिकेश गया, अरविंद आश्रम गया, और कहीं शांति नहीं मिली। तो किसी ने आपका नाम ले दिया है अरविंद आश्रम में तो वहां से यहां आ गया। मुझे शांति चाहिए। तो मैंने उन सज्जन को कहा, वे कोई ठेकदार हैं यहां इंदौर में, और काफी पैसे वाले होंगे। उनसे मैंने यह पूछा, कि जब आप अशांति पैदा किए थे तो किससे पूछने गए थे? अरविंद आश्रम गए थे, ऋषिकेश गए थे, मेरे पास आए थे, कहां गए थे? शांति के लिए तो आप हमको जिम्मेवार ठहरा रहे हैं कि वह अरविंद आश्रम हो आया कुछ शांति नहीं मिली। वह आदमी यह कह रहा है कि ऋषिकेश हो आया, कुछ नहीं सार, कोई शांति नहीं मिली। मैंने उनसे पूछाः यही तुम यहां से भी कहते जाओगे। वह उसके पहले कि तुम कहते हुए जाओ, मैं तुमसे यह समझ लूं कि तुम अशांति किससे पाए थे, कौन गुरु है? यानी कुछ जगह जहां से अशांति तुमने पाई हो?

वह आदमी कहने लगा, अशांति, अशांत तो मैं खुद ही हो गया। तो मैंने कहाः अशांत तुम खुद हो गए और शांति तुम मुझसे या किसी और से चाहते हो, तो फिर बहुत मश्किल मामला है। अशांत तुम हो गए, तो तुम्हें समझना चाहिए कि अशांत किस प्रक्रिया से हो गए? कौन सा रास्ता अख्तियार किया जिससे अशांत हो गए? कौन सी तरकीब लगाई कि जिससे अशांत हो गए? ठीक उलटे वापस लौट आओ।

एक आदमी चला गया पूरब की तरफ और कहता है कि मैं पश्चिम की तरफ कैसे जाऊं? उससे हम कहेंगे कि तुम उलटे चल पड़ो, वापस अपनी जगह पर आ जाओगे।

लेकिन, मैंने कहाः तुम बईमान हो, तुम जिस तरकीब से अशांत हो गए उसको छोड़ना भी नहीं चाहते और शांति की तरकीब भी चाहते। यानी जो मामला चल रहा है पूरा वक्त माइंड में वह यह है कि वह अशांति यूं तो ठीक है, वे कहने लगे, वह तो छोड़िए, उसका कुछ मतलब नहीं था, आप तो हमें शांति का रास्ता बता दीजिए। यानी वह जो हम करते रहे हैं, जो हो रहा है, वह तो ठीक है, उसको तो छोड़िए, उससे क्या करना आपको, आप तो शांति का रास्ता बताइए।

अब आप समझते हैं कि शांति का रास्ता कहां से आ जाएगा? इस आदमी को लौटना पड़ेगा। क्योंकि अशांति एक यात्रा है--और कदम-कदम उठाए गए हैं, और जाल बढ़ाया गया है, इसको वापस लौटना पड़ेगा। वह कहता है, उसकी तो बात ही मत करिए, आप तो मुझे शांत होने का रास्ता बता दीजिए, मैं उसका उपयोग करूंगा और शांत हो जाऊंगा।

मैंने उसको कहा कि न मेरे पास कोई रास्ता है, और न किसी और के पास कोई रास्ता है। तुम फिजूल भटको मत। इससे तुम और अशांत होते चले जाओगे। तुम दो दिन रुक जाओ यहां, और तुम मुझे ईमानदारी से कहो कि तुम अशांत कैसे हो गए हो? और अगर वह तुम नहीं कह सकते, तो बात खतम, मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। और तुम किसी से यह जाकर मत कहना कि वहां मैं गया और शांत होकर नहीं लौटा। क्योंकि इसका कोई संबंध ही नहीं मुझसे शांत होने का तुम्हारा। मैं इतना कर सकता हूं कि तुम अशांत कैसे हुए, उसकी प्रक्रिया की बात कर सकता हूं कि तुम ऐसे-ऐसे अशांत हो गए हो। मैं यह भी कह सकता हूं कि तुम ऐसे-ऐसे शांत हो जाओगे। और वह जो प्रक्रिया होगी ठीक उससे उलटी होगी जो तुम्हारी... अब हर आदमी अलग ढंग से अशांत हुआ है, आप कभी सोचते हैं? और सब आदमी एक गुरु के पास बैठ कर एक मंत्र लेकर शांत हो रहे हैं। यह कैसी बेवकूफी, यह हो ही नहीं सकती। यह एब्सर्ड है बिल्कुल। क्योंकि अशांत वे इनडिविजुअल ढंग से हुए। और प्रत्येक के अशांत होने का अपनी मैथडोलॉजी है, वह दूसरे जैसी नहीं है। और एक गुरु को पकड़े हुए हैं और वह सबके कान फूंक रहा है कि हम सबको शांत कर देंगे।

यह जीवन का जो मसला और उलझाव है उस उलझाव में एक बुनियादी बात समझ लेना कि जीवन का सब उलझाव नितांत वैयक्तिक है। इसलिए सुलझाव भी व्यक्तिगत होने वाला है। इसमें सामुहिक नुस्खे नहीं हैं। अभी तो यह तो भीतर की बात है, अभी तो डाक्टर्स यह कहने लगे हैं, जो अभी नवीनतम शोध होती वह यह होती है कि बीमारी भी एक-एक की इनडिविजुअल है। अगर मुझको टी. बी. हो जाए और आपको टी. बी. हो जाए, तो ये दो टी. बी. हैं, ये एक ही टी. बी. नहीं हैं। उसका कारण यह है, और इसीलिए एक ही दवाई हो सकता है दोनों पर काम न करें। बीमारी एक है। लेकिन वह आदमी का पूरे का पूरा कंपोजिशन अलग है। हो सकता है उस आदमी को पहले टी. बी. के मलेरिया हुआ हो और मुझको न हुआ हो। तो वह जो टी. बी. उसके भीतर आई है उसके पीछे मलेरिया का सारा का सारा पृष्ठभूमि खड़ी हुई है। और मुझे मलेरिया हुआ नहीं कभी और टी. बी. हो गई, तो मेरी टी. बी. के पीछे वह पृष्ठभूमि नहीं मलेरिया की जो उसके पीछे है। अब वह आदमी क्रोधी हो सकता है और मैं क्रोधी नहीं हूं, तो मेरी टी. बी. और तरह की टी. बी., उस आदमी की और तरह की टी. बी। वे क्रोध के जर्म भी उस टी. बी. को दूसरी शकल देंगे। यानी अगर इस पर गौर इस वक्त, लेकिन इसमें कठिनाई है डाक्टर्स की कि अगर हम यह मान लें कि एक-एक बीमारी इनडिविजुअल ह, तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी। क्योंकि इनडिविजुअल दवा चाहिए। मजबूरी की वजह से एक ही दवा पिला रहे हैं।

लेकिन सचाई यह है, सचाई यह है कि एक-एक बीमारी--आपका जुकाम, आपका ही जुकाम है, दुनिया में न कभी किसी को वैसा हुआ, न हो सकता है। क्योंकि आपका पूरा कंपोजिशन, पूरा व्यक्तित्व। आप जिस बाप के बेटे हैं आप ही हैं, आपके बाप वह दूसरा नहीं है। और आप, और मजा यह है कि अभी जो नवीनतम चिंतन चलता है वह यह कहता हैः एक बाप के भी दो बेटे एक ही बाप के बेटे नहीं हैं। क्योंकि डेढ़ वर्ष में बाप बदल जाता है। सब बदल जाता है। डेढ़ वर्ष में मां बदल जाती है। एक ही बाप के दो बेटे भी एक ही बाप के बेटे नहीं हैं। डेढ़ वर्ष में दूसरा बेटा पैदा होता है दो साल बाद। दो साल में मां भी बहुत बदल गई, बाप भी बहुत बदल गया। सारी धारा बदल गई। एक नई धारा से अब यह फिर नया बेटा पैदा हुआ। इसके मां-बाप बिल्कुल अलग हैं। इसलिए दो भाईयों में भी कोई तालमेल नहीं है। इसका नहीं होने का कुल कारण यह है कि उनमें भी कोई तालमेल नहीं हो सकता।

वे जो दो जुड़वां बच्चे पैदा होते हैं वे भी बुनियादी रूप से अलग हैं। क्योंकि जो अणु उनको बनाते हैं वे दोनों अलग-अलग अणु हैं। अब बाप के एक संभोग में कोई एक करोड़ बच्चे पैदा हो सकते हैं, इतने अणु हैं। यानी

एक करोड़ जीवाणु हैं। और वे एक करोड़ जीवाणु प्रत्येक इनडिविजुअल हैं। एक जीवाणु से दूसरा बिल्कुल वैसा ही भिन्न है जैसा हमारे पूरे समाज में हम भिन्न हैं। वे एक करोड़ जीवाणु जो हैं वे सब अलग-अलग ढंग के हैं। अब उनमें से एक एक बच्चे को पैदा करता है, उसमें से दूसरा दूसरे बच्चे को पैदा करता है। वे दोनों बच्चे अलग होने वाले हैं। यह बहुत ध्यान से समझ लेना कि जीवन में अत्यंत वैयक्तिक है। और इसलिए जीवन का सारा उलझाव व्यक्ति का उलझाव है। और अंततः सुलझाव सब व्यक्तिगत होंगे।

इसलिए मैं इतना जोर देता हूं कि गुरु-वुरु बेमानी की बातें हैं। किसी के पीछे-वीछे चलना सब फिजूल है। फिकर तुम अपनी करो। और अपने पूरे व्यक्तित्व की, पूरे चित्त की करो। यह मुझसे मत पूछो कि क्या लक्ष्य है। वह लक्ष्य तो तुम्हारे जीवन भर चलने से उदघाटित होगा। जरूरी नहीं है कि हो जाए। क्योंकि लाख में से एकाध का होता दिखाई पड़ता है अब तक। बाकी का तो होता ही नहीं। वे बिना ही लक्ष्य के जीते हैं और मरते हैं। लेकिन हो सकता है, पासिबिलिटी भर है। और वह संभावना कम हो जाएगी अगर तुमने किसी और के चक्कर में पड़ कर चलना शुरू किया, तो एकदम कम हो जाएगी। तुम किसी के चक्कर को ही मत मानना। एक मौका तुम्हें भगवान ने दिया है कि तुमको बना दिया है। अब तुम क्यों फिकर करते हो। अब तुम इसकी फिकर करो कि क्या मैं कर सकता हूं खोज-बीन, वह करूं। कूद जाऊं पूरी ताकत से। कोई फिकर नहीं, नहीं मिलेगा तो नहीं मिलेगा। कोई ठेका भी नहीं है कि मिलना ही चाहिए। कोई ऐसी मजबूरी भी नहीं है ऊपर से कि मिलना ही चाहिए। लेकिन अगर तुम कूद गए, तो वह जरूर मिल जाएगा। वह जरूर मिल जाएगा। क्योंकि तुम्हारे कूदने में ही उसके मिलने की शुरुआत शुरू हो जाती है।

अपने चित्त को समझो, अपने व्यक्तित्व को समझो, अपने को समझो। और समझ उधार मत लाओ कभी भी। क्योंकि किसी की भी समझ उसके अपने व्यक्तित्व की समझ है। यानी अगर मैं कुछ भी कहूंगा, अगर मैं कोई जीवन का लक्ष्य भी बताऊं, तो वह मेरे जीवन के लक्ष्य की समझ होगी मेरी। तो मैं यही कह सकता हूं कि मैं अपने जीवन की लक्ष्य की समझ को किस-किस भांति खोज रहा हूं। वह लक्ष्य तो मेरा ही होना वाला है, वह मैं ही हो सकता हूं, तुम तुम ही हो सकते हो। और अगर ठीक से समझो, तो जब तक तुम तुम्हीं नहीं हो जाते तब तक तुम्हें आत्मवान कहलाने का कोई हक नहीं है। आत्मवान होने का इतना ही मतलब है कि तुम उस जगह पहुंच गए जहां तुम अद्वितीय हो गए, जहां तुमने वह जगह पा ली कि अब, अब तुम तुम जैसे तुम ही हो और कोई भी नहीं है। इसकी फिकर, यानी, मेरा मतलब समझ रहे तुम? एक-एक व्यक्ति के जीवन की दिशा और लक्ष्य बिल्कुल उसका अपना है।

एक मैं तुम्हें घटना बताऊं, विनसेंट वानगॉग का नाम तुमने सुना होगा। सुना न? पढ़ा न वानगॉग को? वानगॉग का बाप एक चर्च का पादरी है। और वह चाहता है उसका बेटा भी इस चर्च का पादरी हो जाए। और वानगॉन चित्रकार है। और चित्र से कोई पैसे नहीं मिलते, भूखा मरना पड़ेगा। और पादरी का धंधा भी प्रतिष्ठित है--पैसा भी मिलता है, आदर भी है, इज्जत भी है। वानगॉग को पढ़ा-लिढ़ा कर जबरदस्ती किसी तरह, वह पास भी नहीं हो पाता है पादरी की परीक्षा में। लेकिन फेल भी हो गया, तो भी उसे एक दूसरे दूर के गांव के चर्च में पादरी की जगह मिल जाती है, जहां कोई जाने को राजी नहीं है। वह वहां चला गया। छह महीने बाद उसके घर के लोग वहां देखने गए, तो चर्च में कोई आता-जाता ही नहीं। क्योंकि छह महीने में उसने कोई एक प्रवचन नहीं दिया। बल्कि कोई आ जाता है तो उसको बिठा कर मॉडल बना कर वह अपना पेंट करता रहता है। कोई अगर आ गया, कोई बुड्ढा-बुड्ढी आ गया प्रार्थना-व्रार्थना करने, तो वह प्रार्थना कर रहा है और वह जो पादरी है वह उसका पेंट कर रहा है। अब उसके पास रंग के लिए पैसे भी नहीं है, तो वह कोयले से ही पेंट कर रहा है।

फिर उसकी कमेटी को खबर हो गई, भई कहां का पादरी भेजा हुआ है? न तो वह कभी बोला एक दिन, न उसने कभी समझाया। बल्कि हम फंस जाएं तो वह और दरवाजा लगा कर कहता है कि थोड़ी देर बैठ जाइए जरा आपका चित्र बना लूं। तो वह चित्र बना रहा है। तो उसको तो चर्च से निकाल दिया गया फौरन। यह, यह कहां का आदमी आ गया! इसको बाहर करो, इसकी कोई जरूरत नहीं है।

उसके घर के लोगों ने समझाया कि तुम भूखे मर जाओगे। तो उसने जो बात कही, उसने कहा कि दो बातें मुझे दिखाई पड़ती हैंः या तो मैं अपने शरीर को भर लूं या अपनी आत्मा को भर लूं। या तो मेरी आत्मा भूखी रह जाए या मेरा शरीर भूखा रह जाए। तो दोनों में से मैंने यही चुना कि शरीर भूखा रह जाए, कोई दिक्कत नहीं, लेकिन आत्मा को मैं भरना चाहता हूं। तो मैं नमस्कार करता हूं, मुझे पादरी नहीं होना। वह हो जाऊंगा तो मेरा शरीर भर जाएगा, लेकिन आत्मा मेरी सदा के लिए खाली रह जाएगी।

इतनी हिम्मत न हो तो आत्मा नहीं मिलती। तो मैं तुमसे कहता हूं कि तुम्हारे बड़े-बड़े जगतगुरुओं के पास जो आत्मा नहीं वह विंनसेंट वानगॉग के पास है। हालांकि वह शराब पीता है। हालांकि वह वेश्याओं के घरों में भी पड़ा रहता है। लेकिन तुम्हारे बड़े से बड़े साधु के पास आत्मा नहीं है जो उसके पास है। मेरा मतलब समझ रहे तुम? मेरा मतलब इनडिविजुअल होने की हिम्मत।

एक वेश्या के घर में वह... उसे किसी लड़की ने कभी कोई प्रेम नहीं किया; क्योंकि वह आदमी अजीब है। बहुत सी चीजें होती हैं जिनको प्रेम किया जाता है--पैसा हो, शकल हो, इज्जत हो, आदर हो। वह उसके पास कुछ भी नहीं है। न उसके पैसा है, न इज्जत है, न आदर, सब जगह अपमानित। उसे कभी किसी ने कोई प्रेम ही नहीं किया। किसी लड़की ने कभी उससे कहा ही नहीं कि मैं तुम्हें पसंद करती हूं।

एक लड़की से उसका प्रेम था, लेकिन वह उसकी चचेरी बहन लगती है। उसके घर के लोगों ने कहा कि यह तो शादी हो नहीं सकती, इसलिए तुम इस घर में आना ही मत।

तो एक सांझ वह गया हैः सारे घर के लोग खाना खाने पर बैठे हुए हैं, जैसे ही वह अंदर घुस गया है, लड़की को उठा दिया टेबल से उन लोगों ने, एक थाली खाली रह गई है, उसने जाकर कहा कि कहां है वह लड़की, मैं आखिरी बार मिलने आया हूं; क्योंकि मैं विदा ले लूं, मैं जा रहा हूं। उन्होंने कहा कि नहीं, उससे तुम नहीं मिल सकते, वह यहां है भी नहीं। उसने कहाः वह है तो जरूर, क्योंकि थाली एक टेबल पर आधी खाई रह गई है, आप सब खाना खा रहे हैं, वह उठाई गई है। और ज्यादा देर मैं नहीं उससे मिलूंगा, सिर्फ एक दफा देख लूं, क्योंकि आखिरी वक्त, फिर दुबारा शायद मैं लौटूं भी नहीं, कल का भरोसा भी नहीं है कुछ। उन्होंने कहा कि नहीं, किसी शर्त पर हम उसे तुम्हें देखने नहीं देंगे। उसने कहाः देखो, मैं और तो कुछ दांव नहीं लगा सकता हूं, आग जल रही है, उस आग पर उसने अपना हाथ रख दिया। उसने कहाः जितनी देर में हाथ रखे रह सकूं उतनी देर तक उसे देखूंगा, बस। उसका हाथ जलने लगा, और हाथ रखा हुआ है आग पर। और घर के लोगों ने उसे धक्का दिया। और उस लड़की के बाप ने कहा कि वह इतना पागल है कि अगर तुम लड़की को सामने ले आए, उसका पूरा शरीर जल जाएगा, वह हिलेगा नहीं, लेकिन पूरा देखता रहेगा जब तक जिंदा रहे।

इस आदमी के भीतर कुछ है जिसको हम कहेंगे बहुत ठोस। मेरा मतलब समझे न तुम? उसे अलग कर लिया है। उसको जिंदगी में, वह पेरिस चला आया है और किसी वेश्या के पास गया हुआ है। उस वेश्या ने उससे मजाक में ऐसा कह दिया कि तुम्हारा कान बहुत सुंदर है। वह घर गया और कान काट कर कपड़े में बंद करके उसके सामने जाकर रख दिया। क्योंकि यह शरीर तो कल खतम हो जाएगा। कल इसको लोग जला देंगे। और

इस शरीर में कोई भी चीज सुंदर है किसी ने कभी कही नहीं थी। तूने सिर्फ कान की तारीफ की है, ये कान तू सम्हाल।

यह आदमी तो बिल्कुल पागल मालूम होगा! लेकिन तैंतीस साल की उम्र में उसने कोई दो सौ के करीब पेंटिंग छोड़ गया है। एक-एक पेंटिंग की कीमत चार-चार, पांच-पांच लाख रुपया है, अब। उस वक्त तो चार-चार, पांच-पांच पैसे भी नहीं थी। और आज लोग कहते हैं कि वानगॉग से बड़ा चित्रकार ही नहीं हुआ कभी। और होगा तो सैकड़ों वर्ष लग जाएंगे।

अब अगर तुम, अगर कोई चित्रकार वानगॉग के पीछे चलने लगे और कहीं कान काट कर दे आए, तो बेवकूफी है। नहीं, उसका कोई मतलब नहीं होगा। वह वही कर सकता है। और कोई करेगा तो नासमझी है। अब महावीर नग्न खड़े हो गए, वह समझ में आने वाला है। न मालूम कितने नासमझ नंगे घूम रहे उनके पीछे। वे बिल्कुल पागल हैं। बिल्कुल पागल हैं। उनमें कोई व्यक्तित्व ही नहीं है। उन्हें पता ही नहीं कि हम यह क्या कर रहे हैं। तो वह केवल नंगे होने की प्रदर्शनी है, इससे ज्यादा नहीं है। और उनके नग्नपन में वह सौंदर्य ही नहीं है जो महावीर के में है। क्योंकि वह नंगापन कोई उधार नहीं था किसी से। वह किसी मौज से आ गया है, कपड़े छूट गए हैं, वह आदमी नंगा खड़ा है। उसे पता भी नहीं कि वह नंगा है। इनको पूरी तरह पता है, ये अभ्यास कर रहे हैं।

मैं एक... हां, यह बिल्कुल अभ्यास से किया हुआ नंगापन है। इसकी प्रैक्टिस करनी पड़ती है। मैं इधर एक, एक जैन साधु हैं, वे ब्रह्मचारी हैं, तो वे एक बीना के पास एक छोटी जगह में कहीं रहते हैं। मुझे बहुत दफे कहा था कभी आना। तो मैं उधर निकल रहा था, तो गया। दूर जंगल में रहते हैं। तो मैं जब उनकी झोपड़ी के पास पहुंचने लगा तो ऐसे खिड़की में से मुझे दिखा कि वे अंदर नंगे टहल रहे हैं। जब मैंने दरवाजे पर जाकर दस्तक दी, तो देखा कि वे चादर लपेट लिए। तो मैंने उनको कहा कि खिड़की से मुझे दिखाई पड़ा कि आप नंगे हैं। आपने चादर क्यों लपेट ली? उन्होंने कहा कि मैं जरा अभ्यास कर रहा हूं। अब मैं मुनि होने का अभ्यास कर रहा हूं। थोड़ी हिम्मत बढ़ाता हूं। पहले अभी अकेले कमरे में नंगा टहलूंगा, फिर अपने मित्रों में दो, चार-दस में, फिर थोड़ा गांव में, फिर दिल्ली में। ऐसा धीरे-धीरे जाएंगे।

यह अभ्यासित नंगापन है। प्रैक्टिस। यह सर्कस हो गई, इसका क्या मतलब है? अगर महावीर ने ऐसा किया हो तो दो कौड़ी का है वह नंगापन। उसका कोई मतलब ही नहीं रहा। लेकिन महावीर को करने का कोई कारण नहीं, वह उनकी सहज अपने व्यक्तित्व की खोज है। अब उसके पीछे जो गया वह मरा।

तो किसी के पीछे मत जाना। हमेशा इसकी फिकर करना कि मैं क्या हो सकता हूं। और कभी फिकर मत करना कि दुनिया क्या कहती है। क्योंकि तुमने यह फिकर की कि दुनिया क्या कहती है तुम फिर वह नहीं हो सकोगे जो तुम हो सकते हो। फिकर ही मत करना। यह चार दिन की जिंदगी है, इसमें फिकर मत करना कि दुनिया क्या कहती है। यही तपश्चर्या है कि तुम फिकर मत करना की दुनिया क्या कहती है। इससे बड़ा कोई तप नहीं है। क्योंकि दुनिया पूरे वक्त कहेगी कि ऐसा कमीज पहनो, ऐसा कपड़ा पहनो, सब ऐसा पहन रहे हैं। ऐसे उठो, सब ऐसे उठ रहे हैं। ऐसे बैठो, सब ऐसे बैठ रहे हैं। दुनिया तुम्हारे पर पूरे वक्त कोशिश करेगी कि तुममें व्यक्तित्व न हो। क्योंकि व्यक्तित्व खतरनाक है। तुम समाज एक अंग रहो, बस।

तुम्हारी आत्मा खो जाएगी, अपनी। वह कैसे तुम खो सकते हो उसकी बात मैं करता हूं, वह क्या है जिसको खोजना है उसकी बात मैं नहीं करता।

हूं, कुछ और बात हो तो कर लें, फिर उठना पड़ेगा।

क्योंकि इनमें से कुछ भी तुम्हारे इनर डिस्टेंस को कोई भी चोट नहीं पहुंचाता है। इनमें से कुछ भी। लेकिन अगर तुम्हें भीतर का कोई पता न हो, तो फिर तुम एक पत्नी के पति, और एक मकान के किराएदार, और दफ्तर के नौकर, यही रह जाते। तुम इसका जोड़ हो फिर। अगर भीतर कुछ भी नहीं है तो, ठीक। अगर भीतर कुछ भी नहीं है, तो तुम एक जोड़ हो इन्हीं चीजों का--एक लड़के के पिता, एक स्त्री के पति, एक मकान के किराएदार, एक दफ्तर के नौकर, किसी के मित्र, किसी के दुश्मन, सिर्फ तुमको इन सबका जोड़ है। इन सबको जोड़ दिया जाए, तो तुम बन गए। लेकिन तुम यह मानने को राजी नहीं होओगे कि मैं इन सबका जोड़ भर हूं। तुम कहोगेः समथिंग मोर। यह तो मैं हूं कि एक पत्नी का पति हूं, और एक लड़के का बाप हूं, और एक मकान का किराएदार हूं। लेकिन मैं भी हूं! और वह जो मैं है वह न किसी मकान का किराएदार है, और न किसी पत्नी का पति है, और न किसी बेटे का बाप है।

तुम यह तो कहोगे न कि मैं कुछ इस सबके अतिरिक्त भी हूं? और वह जो अतिरिक्त होना है वही तुम्हारा इनर एक्झिस्टेंस है, वही तुम्हारा अतंर-आत्मा है। इसका मतलब यह हुआ, इसका मतलब यह हुआ कि हमारे चारों तरफ बाहर के संबंध हैं। लेकिन कौन संबंधित है उन बाहर के संबंधों में? अगर भीतर कुछ भी नहीं है और संबंध ही संबंध हैं, तब तो कोई संबंधित नहीं है, फिर तो कोई संबंधित नहीं है। मैं हूं न! मैं किसी का पति हूं! तो मैं तो हूं, पति होने के अतिरिक्त, तब तो मैं पति हो सका हूं, नहीं तो पति भी नहीं हो सकता। मेरा होना तो जरूरी है न पति बनने के लिए। और अगर मैं पति ही रह गया हूं, तो मैंने आत्मा खो दी। मेरा वह जो अतिरिक्त होना है, वह कायम रहना चाहिए।

इसका मतलब यह हुआ कि निश्चित ही हम बाहर संबंधित हैं। और हमारे संबंध हमारा जीवन है, लेकिन हमारे संबंध हमारी आत्मा नहीं है। और जीवन और आत्मा में इतना ही फर्क है। लाइफ और एक्झिस्टेंस में इतना ही फर्क है। हमारे संबंध हमारा जीवन है। लेकिन हम जीवन से ज्यादा हैं। क्योंकि हम संबंधों के पहले हैं। संबंधों के बीज भी अलग हैं। और संबंध टूट जाएंगे तो भी हम होंगे। हम नये संबंध खड़े कर लेंगे। तुम एक मकान के किराएदार हो कल तुम दूसरे मकान के किराएदार हो सकते हो, परसों तुम बिना मकान के रास्ते पर खड़े हो सकते हो कि हम मकान को इनकार करते हैं।

बुद्ध ने महल छोड़ा, तो जिस जंगल में वे गए, वहां के साधुओं ने एक छोटा झोपड़ा बना दिया। वे उस झोपड़े में रात सोने को जा रहे थे और उन्हें खयाल आया, यह क्या हुआ? एक साया छोड़ा दूसरा स्वीकार कर लिया, इससे फर्क क्या पड़ा? उन्होंने कहा कि नहीं, इस झोपड़े में मैं नहीं जाऊंगा, मैं झाड़ के नीचे ही सो रहूंगा। क्योंकि महल से झोपड़े में गया, मकान बदल गया, लेकिन फिर भी मैं एक मकान का वासी ही रहा न? मैं झाड़ के नीचे सोता हूं। अब यह जो आदमी झाड़ के नीचे सो गया यह कल मकान के भीतर भी था, वह एक संबंध था, यह एक दूसरा संबंध है। और यह जो भीतर आदमी है यह संबंध बदल ले सकता है।

मेरा कहना यह है कि तुम सारे संबंधों में रहो, भागने को मैं कहता नहीं, क्योंकि भागोगे कहां, जहां भी भागोगे नये संबंध निर्मित हो जाएंगे। अगर बुद्ध से मिलना हो, तो उनसे मैं कहूंगा कि आप अगर झोपड़े से भागे तो झाड़ से संबंध निर्मित हुआ। आप सोए तो कहीं? कल तक कहते महल में सोता हूं; अगर झोपड़े में सोते तो कहते झोपड़े में सोता हूं, आज कहोगे कि झाड़ के नीचे सोता हूं। सोओगे तो झाड़ से संबंध बनेगा, झोपड़े से बनेगा। न बनाओगे तो आकाश से बनेगा। जाओगे कहां? अगर पत्नी को छोड़ कर भाग जाओगे कल एक शिष्या

मिल जाएगी, उससे एक संबंध बनेगा। बेटे को छोड़ कर भागोगे कल एक शिष्य मिल जाएगा, उससे संबंध बनेगा। जाओगे कहां?

होने का मतलब ही संबंधित होना है। टू बी इ.ज टू बी रिलेटिड। नहीं तो हो ही नहीं सकते। तो इसलिए मैं कहता हूं कि संन्यासी पागलपन में पड़ा हुआ है। वह कहीं भी जाएगा वह फिर संबंधित हो जाएगा। इधर घर था, उधर आश्रम होगा। इधर परिवार के लोग थे, वहां एक नया परिवार होगा, आश्रम का परिवार होगा। मगर यह जारी रहेगा। क्योंकि मैं हूं और तुम हो और चारों तरफ सब हैं, तो हम किसी न किसी रूप में संबंधित होंगे, हम बच नहीं सकते। हमारे संबंध निगेटिव भी हो सकते हैं, तो भी हम संबंधित होंगे।

जैसे समझ लो कि इंदौर में इलेक्शन हो रहा है, और मैं वोट करने नहीं गया, तो भी मैं जिम्मेवार हूं जो आदमी चुनता है उसके लिए। लेकिन मैंने वोट नहीं किया हालांकि। लेकिन हो सकता है मेरे वोट करने से वह आदमी नहीं आता, मेरे वोट न करने से वह आदमी आ गया। कहीं भी मैं भाग सकता नहीं हूं। अगर आपका मुनि वोट नहीं कर रहा है, तो इसलिए यह न समझ ले कि वह वोट करने से बच गया। वह वोट भला न करे, लेकिन वह जो आदमी चुना जा रहा है उसके लिए जिम्मेवारी उसकी है। वह चाहे घर में बैठा रहे, रिस्पांसिबिलिटी है। इस वक्त मुल्क में जो हुकूमत चल रही है मैं जिम्मेवार हूं। मैंने कभी वोट नहीं किया, लेकिन मैं जानता हूं कि मैं जिम्मेवार हूं। इससे सवाल नहीं उठता, चाहे हम निगेटिवली रिलेटिड हों, लेकिन रिलेटिड होंगे।

रिलेशन तो, अंतर्संबंध तो अनिवार्यता है। जीवन है, इसलिए भागने का कोई सवाल नहीं है। अब सवाल यह है कि चाहे इन अंतर्संबंधों के बीच हम उसे खोज सकते हैं जो संबंध मात्र नहीं है, वह जो बीइंग है। उसे खोजा जा सकता है।

बल्कि मेरा अपना कहना हैः उसे संबंधों में जितनी सरलता से खोजा जा सकता है संबंधों से भाग कर उतनी सरलता से नहीं खोजा जा सकता। आज जब तुम रात अपनी पत्नी के गले में हाथ डाल कर प्रेम की बातें करने लगो, तब तुम देखना, कि यह जो तुम प्रेम की बातों कर रहे हो और ये संबंध की बातें कर रहे हो, इसके अतिरिक्त भी तुम कुछ हो कि नहीं? और तब तुम पूरी तरह पाओगे कि एक पत्नी है और एक पति है और मैं भी हूं। और वह पति बिल्कुल नहीं है, वह मामला ही और है।

मैं कल नसरुद्दीन की बात कह रहा था रात। उसका एक राजा की पत्नी से प्रेम था। वह फकीर था। तो एक रात वह उस पत्नी से विदा ले रहा है, उस राजा की पत्नी से, कोई तीन बजे हैं, और उस गांव को छोड़ रहा है। वह उस स्त्री से कहता है कि तुझसे सुंदर स्त्री मैंने कभी नहीं देखी। तुझे ही चाहा है, तू ही सब कुछ है। वह स्त्री तो खिल कर फूल हो गई। नसरुद्दीन जैसे आदमी ने यह बात कही। और तभी उसने कहा कि ठहर, ठहर! तू फूल मत जा, क्योंकि ये बातें में और स्त्रियों से भी कह चुका हूं। मैं ये बातें और स्त्रियों से भी कह चुका हूं। और वायदा नहीं करता कि आगे नहीं कहूंगा, आगे भी कहूंगा। और जो भी स्त्री मिलती है उससे ही यह कहता हूं। तो तू फूल मत जाना।

अब वह नसरुद्दीन बहुत अदभुत आदमी है। वह जो, जो घटना थी उस घटना को उसने दूसरा विस्तार दे दिया। उसने कहा कि मैं अलग हूं घटना से, और ये बातें मैंने औरों से भी कही हैं। ये बातें औरों से भी कहूंगा। और यह बता कर उसने यह भी बता दिया कि यह जो कहने वाला है इससे भी अतिरिक्त उसके भीतर एक कांशसनेस है जो इसको भी जानती है कि यह तो रोज कह रहा है। न मालूम किस-किस स्त्री से क्या-क्या कह रहा है।

तो हमारे संबंधों के बीच हमें धीरे-धीरे उसकी खोज करनी चाहिए जो संबंधित नहीं है--असंबंधित, असंग, वह जो असंग खड़ा हुआ है संबंधित होते हुए।

जब तुम चल रहे हो रास्ते पर, तब भी तुम्हारे भीतर कोई है जो नहीं चल रहा है। जब तुम मुझे सुन रहे हो, तब भी तुम्हारे भीतर कोई है जो नहीं सुन रहा है। जब तुम प्रेम कर रहे हो, तब भी तुम्हारे भीतर कोई है जो नहीं प्रेम कर रहा है। जब तुम लड़ रहे हो, तब भी तुम्हारे भीतर कोई है जो नहीं लड़ रहा है। सारे कमिटमेंट के बीच कोई अनकमिटेट पॉइंट है, और उसी का नाम बीइंग, उसी का नाम आत्मा है। और उसकी खोज जारी रखनी चाहिए। और उससे भागने की कोई जरूरत नहीं है। अपने सारे संबंधों में खयाल रखो कि मेरे भीतर कोई असंबंधित भी है क्या? अगर है तो उसकी कांशसनेस बढ़ाए चले जाओ, बढ़ाए चले जाओ। और तब तुम पाओगे कि जिंदगी एक नाटक हो गई, और जिंदगी एक अभिनय हो गई। और तब तुम पाओगे कि अच्छा हो कि बुरा, सुख आए कि दुख, सफलता मिले कि असफलता, यश मिले कि अपयश, तुम्हारे भीतर एक बिंदु है जो बाहर है। यह बिंदु हमेशा आउटसाइडर है।

वह जो तुम मुझसे पूछते हो कि आप इनसाइडर कि आउटसाइडर? यह बिंदु हमेशा आउटसाइडर है। यह कभी भी इनसाइडर नहीं है। यह कभी भीतर आया नहीं, वह हमेशा बाहर खड़ा है। जिसको पुराने शास्त्रों ने कुटस्थ आत्मा कहा है, वह आउटसाइडर है। वह जो हमेशा ही बाहर है। यानी तुम कुछ भी उपाय करो, वह भीतर होता ही नहीं। तुम कुछ भी उपाय करो तुम उस बिंदु को भीतर ला ही नहीं सकते। अगर तुम किसी की हत्या भी कर रहे हो, अब हत्या बहुत ही टोटल एक्ट है। क्योंकि जब तक कि कोई पूरी तरह से न भर जाए कोई किसी की हत्या नहीं करता। हत्या करने का मतलब है तुम पूरी तरह से डूब गए तब तुम करते हो। लेकिन हत्या करते क्षण में भी तुम्हारे भीतर एक है जो देख रहा है कि तुम हत्या कर रहे हो और अलग है। उस क्षण में भी अगर तुम जाग कर देखो तुम पाओगे कि तुम हत्या भी कर रहे हो और तुम्हारे भीतर कोई अलग है।

इस जो निरंतर बाहर है और बाहर ही है और भीतर नहीं हो सकता। इसका बोध जितना बढ़ता चला जाए, उतना, उतना कहना चाहिए कि सत्य के निकट हम पहुंचने लगे। और जब यह पता चल जाए कि कोई बाहर है, तो फिर भीतर होना एक नाटक हो गया, और एक खेल हो गया, और एक मौज हो गई, और एक मजा हो गया। फिर तुम इनसाइडर हो सकते हो। लेकिन उससे कोई, फिर कोई उसमें कोई कठिनाई नहीं है। फिर तुम पति हो सकते हो, तुम दुकानदार हो सकते हो, तुम दोस्त हो सकते हो, तुम दुश्मन हो सकते हो, और वह सब खेल है। और तुम उसी तरह खेल रहे जैसे कोई खेल खेल रहा हो। उतना ही। मगर वह जो आउटसाइडर है, वह जो बाह्य है, बाहर खड़ा हुआ बिंदु है, वह स्पष्ट से स्पष्ट होते जाना चाहिए। और ध्यान जिसे मैं कहता हूं, उसे ध्यान मैं इसी को कहता हूं कि भीतर रहते हुए जगत के वह जो सदा बाहर है उसको जानने की प्रक्रिया का नाम ध्यान है। सब भीतर होते हुए जो सदा बाहर है।

हम सब भीतर हैं और बाहर भी हैं। लेकिन भीतर में हम इतने भूल जाते हैं कि बाहर होने का हमें कोई पता नहीं, इसलिए हम बहुत दुख उठाते हैं, व्यर्थ दुख उठाते हैं। यानी वह मामला ऐसा ही है जैसे कि कोई आदमी अभिनय कर रहा हो और भूल जाए।

मुझे किसी ने सुनाया... और वह जो रावण बना है और वह जो स्त्री सीता बनी है। रामलीला शुरू हुई है, और वह स्वयंबर हो रहा है। रावण भी वहां आया हुआ था। लेकिन खबर आई है कि लंका में आग लग गई है। खबर आती है, बाहर शोरगुल मचता है, लंका में आग लगी है। तो रावण चला जाता है। इस बीच राम का स्वयंबर हो जाता है। वे बाहर चिल्ला रहे हैं कि लंका में आग लगी है, और उस रावण ने कहा कि लगी रहने दो,

आज तो हम स्वयंबर करा कर ही जाएंगे। वह जो रावण बना था आदमी, उसने कहा, लगी रहने दो, आज तो हम स्वयंबर करके ही जाएंगे।

अब बड़ी मुश्किल फैल गई। क्योंकि मामला यह है कि यह आदमी अगर न हटे यहां से तो सारी रामलीला खतम हो गई, क्योंकि वह आगे, आगे का फिर उपाय ही नहीं है। और उसने कहा कि कहां है धनुषबाण? लाओ हम तोड़े देते हैं। और उसने तो उठ कर, वह जनक के सामने धनुषबाण रखा है, उसने तो तोड़ दिया। अब क्या करोगे? अब बड़ी मुसीबत हो गई। अब तो यह हो गया कि अब होगा क्या इसके आगे? क्योंकि सीता का वरण करो उससे। धनुषबाण तोड़ दिया।

तो वह जनक जो था वह बहुत बुद्धिमान बूढ़ा था गांव का। उसने जोर से चिल्ला कर कहा कि भृत्यो, यह तुम बच्चों के खेलने का धनुष कहां उठा लाए, शिवजी का धनुषबाण कहां है? जल्दी से पर्दा गिराया, उस आदमी को धक्का देकर बाहर निकाला। तो पता चला कि वह जो था उसका उस स्त्री से प्रेम था, वह जो सीता बनी थी। वह यह भूल ही गया कि मामला यह नाटक में चल रहा है, वह तो अपने उस खयाल में आ गया कि यह मौका काहे को चूकना। यह मौका मिला नहीं था कभी, यह मौका मिल गया, उसने कहा, अब झंझट क्यों करनी। और वरण करो अपने घर जाओ। नाटक-वाटक नहीं रहा था मामला। समझे न?

यह जो चारों तरफ हमारी जिंदगी है, वह अगर हमें बाहर के बिंदु का बोध हो जाए, तो एकदम नाटक हो जाती है। यह ऐसे हो जाएगी कि तुम पूरे रास्ते भी इसको करोगे और पूरे वक्त बाहर रहोगे। और नहीं कुछ होता है कुछ परिणाम, तो कोई चिंता नहीं, कुछ फिकर नहीं।

तो एक ही साथ इनसाइड और आउटसाइड होना ही कला है जीवन की।

अभी तक दो तरह के लोग हैंः इनसाइडर्स हैं, वे कहते हैं, हम कैसे बाहर जाएं, हम तो उलझे हैं--पत्नी है, बच्चा है, इनसे कहां से बाहर जाएं, एक यह। दूसरे यह कहते हैंः हम सब पत्नी-वत्नी छोड़ कर भाग आए, हम तो बाहर हो गए, हम भीतर जाते नहीं। ये दोनों गड़बड़ हैं।

ऐसा संन्यासी चाहिए जो गृहस्थ हो सके। ऐसा गृहस्थ चाहिए जो संन्यासी हो। तब धर्म की पूरी की पूरी संभावना है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, ये सारे शब्द हैं। ये सारे शब्द हैं। इसलिए इनको अगर उपयोग करिए तो बिल्कुल हो सकता है। लेकिन जिस आनंद को आप पाने वाले हैं, जिस आनंद को मैं पाने वाला हूं, तो कहना चाहिए, आनंद नंबर एक, आनंद नंबर दो; आत्मा नंबर एक, आत्मा नंबर दो। आप मेरा मतलब समझे न? ये जो शब्द हैं ये तो बिल्कुल एक से हैं कि आनंद को पाना जीवन का लक्ष्य है। कह दें, कोई हर्जा नहीं है। लेकिन आप जिस भांति से यह आनंद पाएंगे उस भांति से आप ही पा सकते हैं।

प्रश्नः एप्रोज अलग है और लक्ष्य एक हो।

लक्ष्य तो है ही नहीं अभी, अभी तो वे ही वे है। अभी लक्ष्य कहां है, लक्ष्य आ जाए तो मामला ही खतम हो गया। और जिस दिन लक्ष्य आएगा उस दिन तो आप ही नहीं बचोगे। वह तो वे पर ही आप हो। यानी यह

ध्यान रखना कि यह जो, यह जो जीवन का जो राज है पूरा का पूरा, रास्ते पर जब तक आप हो, पहुंच रहे हो जब तक तभी तक आप हो, पहुंच गए कि आप खतम, फिर तो आप वहां हो ही नहीं। न वहां मैं हूं, न कोई और है वहां। और जहां तक हम हैं वहां तक हम बिल्कुल अलग-अलग हैं। हमारा आनंद भी अलग-अलग है, दुख भी अलग-अलग है, सुख भी अलग-अलग है, हमारी चिंता भी अलग-अलग है। हमारा सब होना अलग-अलग है। और जहां सब एक हो जाएगा वहां सब एक इसीलिए हो जाएगा कि आप ही नहीं बचोगे, मैं भी नहीं बचूंगा।

जैसे, मेरा मतलब आप समझें, गंगा जा रही है और नर्मदा जा रही है और गोदावरी जा रही है और कावेरी भागी चली जा रही है, सबके अपने रास्ते हैं--अपने पहाड़ हैं, अपने प्रपात हैं, अपना मार्ग है। न गंगा का रास्ता गोदावरी का रास्ता, न गोदावरी का रास्ता गंगा का रास्ता। जब तक गंगा गंगा है तब तक अलग है, और जैसे ही समुद्र में गिरी गंगा नहीं रह गई, गोदावरी गिरी गोदावरी नहीं रह गई। और वहां गिर कर न कोई रास्ता है, न कोई गोदावरी है, न कोई गंगा है।

तो जो चरम परिणति है, जो अंतिम पहुंचना है, वह पहुंचने की तो बड़ी अदभुत बात है, क्योंकि वहां पहुंचने वाला खतम हो जाता है। पहुंंचता है और खतम हो जाता है। और जब तक पहुंचना चल रहा है तब तक आप अलग हैं, मैं अलग हूं।

इसलिए जो तथ्य की बात है वह यह है कि हम जानें कि हम अलग हैं। और वह जो अंतिम चरम बात होगी, उसको तो करने का कोई मतलब नहीं है, वहां तो कोई बचता नहीं है। वहां तो गए और गए, आप भी गए और मैं भी गया। और जब तक आप हैं तभी तक तो हम पूछ रहे हैं कि जीवन का लक्ष्य क्या है? जब तक मैं हूं तब तक मैं खोज रहा हूं कि जीवन का लक्ष्य क्या है, तब तक हम बिल्कुल अलग-अलग हैं। और यह जो मेरा जोर है, यह मेरा जोर है कि आप अपने तईं ही खोजें यह इसीलिए जोर है। कि आप अपने तईं ही खोजें तो आप जरूर पहुंच जाएंगे उस सागर तक जहां आप नहीं रह जाएंगे। और उस सागर के लिए न तो आनंद कहा जा सकता, और न सत्य कहा जा सकता, उस सागर के लिए कोई नाम देना संभव नहीं है, ये सब रास्ते एप्रोच के ही नाम हैं, सब बीच के नाम हैं, वहां कोई नाम नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, तो इसलिए मैं कह रहा हूं कि वह जो आपके भीतर छिपा है, जो अंत में रुका है, जो अंत में मिलेगा, उसे कैसे पाया जा सकता है उसकी विधि की चर्चा हो सकती है। लेकिन वह क्या है कोई दूसरा उसे आपके लिए निर्धारित नहीं करेगा। यह तो मैं कह ही रहा हूं। उसकी विधि की चर्चा हो सकती है।

प्रश्नः विधि भी अलग-अलग हो सकती है, अनंत हो सकती है।

अनंत तो होने ही वाली है, लेकिन चर्चा से, वह विधि की चर्चा से आप अपनी विधि को खोजने में सहयोग पा सकते हैं। अलग-अलग ही होने वाली है। हम रास्ते पर चलते भी हैं, तो मैं भी चल रहा हूं, आप भी चल रहे हैं, फिर भी हम अलग-अलग चलते हैं। अगर एक अंधे आदमी से पूछें, तो वह बता देगा कि कौन आ रहा, पैर की आवाज सुन कर। दो आदमियों के पैर का जो चाप है, वह बिल्कुल अलग-अलग होता है।

एक संन्यासी हैं, अंधे हैं, वे दस साल पहले मुझे मिले थे। और दस बाद अचानक, वे ट्रेन में थे ऊपर की बर्थ पर, मैं नीचे की बर्थ पर, जिस स्टेशन से मैं चढ़ा, ऊपर सोए थे, अंधे हैं, जैसे ही मैं चढ़ा, तो न तो मेरा किसी ने नाम लिया न कुछ, लेकिन मैं बात कर रहा था जो लोग छोड़ने आए थे, मैं लेटने लगा तो उन्होंने मेरा नाम लिया और कहा कि आप हैं क्या? मैंने कहाः आपको कैसे पता चला? उन्होंने कहाः आंख न होने से अब तो आवाज से ही पहचानता हूं, आवाज ही खयाल रखता हूं, यह आवाज से।

अंधा आदमी आपके पैर की चाप पहचानने लगता है कि कौन आ रहा है। क्योंकि पैर की चाप तो सब अलग-अलग चापें हैं। चलते हम दोनों हैं।

विधि भिन्न-भिन्न होगी, बिल्कुल एक हो तो भी भिन्न-भिन्न होगी; क्योंकि हम भिन्न-भिन्न हैं। यह भिन्नता पर मेरा जोर इसलिए है कि किसी दिन आप अभिनेता पर पहुंच जाएं। और अगर आपने पहुंचे पहले ही अभिनेता कायम करने की कोशिश की, तो आप कभी नहीं पहुंच पाएंगे।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

बिल्कुल ही। लेकिन आप अलग तरह से छोड़ेंगे। आप अलग तरह से छोड़ेंगे और जो छोड़ेंगे वह दूसरा है आपका, जो ये छोड़ेंगे वह दूसरा है। शब्दों में तो बिल्कुल कामन दिखाई पड़ेगा कि पहला सब छोड़ देना है। लेकिन एक आदमी चोर है और एक आदमी संन्यासी है, और दोनों सुन रहे हैं कि पहलासब छोड़ देना है। और दोनों, एक चोर को चोरी छोड़ देनी है, एक संन्यासी को संन्यास छोड़ देना है। दोनों के लिए मामला बहुत अलग है। और दोनों की छोड़ने की प्रक्रिया अलग होगी। क्योंकि चोरी और ढंग से पकड़नी पड़ती है, संन्यास और ढंग से पकड़ना पड़ता है। मेरा मतलब, शब्दों में तो बिल्कुल ठीक है, ऐसा लगेगा कि छोड़ देना है।

एक घटना कहूं, फिर उठें अपन।

बुद्ध ने एक रात, उनका नियम था रोज का, कि आखिरी प्रवचन जब रात का होता तो वे कहते कि अब भिक्षुओं, रात के काम में लग जाओ। तो रात का काम यह थाः आखिरी ध्यान और फिर विश्राम। तब रोज-रोज यह कहना कि ध्यान करो फिजूल थाः रात्रि का आखिरी काम करो। उस दिन एक चोर भी आया था, एक वेश्या भी आई थी सुनने। जैसे ही उन्होंने कहा कि अब रात्रि का आखिरी का काम करो। भिक्षु तो सोचे कि चलो ध्यान करें। चोर ने सोचा, बड़ी देर हो गई, रात का वक्त हो गया, अपना काम शुरू करें, कहां की झंझट में, कहां की बातों में पड़े हैं। वेश्या ने सुना उसे खयाल आया कि धंधे का वक्त चुका जा रहा है, जाऊं अपने रात का काम करूं। दूसरे दिन सुबह बुद्ध ने कहा कि भिक्षुओं तुम्हें पता नहीं रात मैंने एक ही बात कही थी, लेकिन एक ही अर्थ नहीं निकला। एक चोर ने समझा कि जाऊं चोरी करूं, एक वेश्या ने समझा कि जाऊं दुकान खोलूं, तुमने समझा कि जाएं ध्यान करें। और मैंने एक ही बात कही थी कि रात का कार्य करो।

शब्द तो एक ही हैं, वह गृहीता मन अलग-अलग है। मेथड की भी जो मैं बात करूंगा वह एक ही करूंगा, लेकिन वह आपके साथ अलग-अलग हो जाने वाली है। यह ध्यान में रहे, तो धीरे से आप अपने अलग मेथड को खोजने में सुविधा होगी। और अगर ऐसी जिद्द कर ली कि जो कह दिया उसको लकीर के फकीर होकर पूरा कर देना है, तो उसमें खतरा हो जाएगा, तो उसमें खतरा हो जाएगा।

चौथा प्रवचन

प्रभु तो द्वार पर ही खड़ा है

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक बहुत बड़े मंदिर में बहुत पुजारी थे। विशाल वह मंदिर था। सैकड़ों पुजारी उसमें सेवारत थे। एक रात एक पुजारी ने स्वप्न देखा कि कल संध्या जिस प्रभु की पूजा वे निरंतर करते रहे थे, वह साक्षात मंदिर में आने को है। दूसरा दिन उस मंदिर में उत्सव का दिन हो गया। दिन भर पुजारियों ने मंदिर को स्वच्छ किया, साफ किया। प्रभु आने को थे, उनकी तैयारी थी। संध्या तक मंदिर सज कर वैभव की भांति खड़ा हो गया। मंदिर के कंगूरे-कंगूरे पर दीये जल रहे थे। धूप-दीप, फूल-सुगंध--मंदिर बिल्कुल नया हो उठा था।

सांझ आ गई, सूरज ढल गया और प्रभु की प्रतीक्षा शुरू हो गई, पुजारी जाग कर खड़े थे। लेकिन घड़ियां बीतने लगीं और उस के आने का कोई... कोई भी सुराग न मिला, उसके रथ के आगमन की कोई सूचना न मिली। फिर रात गहरी होने लगी और पुजारियों को शक हो आया। कोई कहने लगा, स्वप्न का भी क्या भरोसा? स्वप्न स्वप्न होते हैं, स्वप्न भी कहीं सत्य हुए हैं! भूल में पड़ गए हम। व्यर्थ हमने श्रम किया। फिर वे थक गए थे दिन भर से, सो गए। दीये का तेल चुक गया और दीये बुझ गए। धूप बुझ गई। घनघोर अंधेरे में मंदिर डूब गया।

लेकिन कोई आधी रात में शोर पथ पर होने लगा। उस प्रभु का रथ उस मार्ग पर मुड़ा, जहां वह मंदिर था। रथ के घोड़ों की टाप सुनाई पड़ने लगी और उसके पहियों की आवाज। सोए हुए थे पुजारी, उसमें एक पुजारी को--लगा रथ जाता है। उसने कहा चिल्ला कर, उठो, जागो, शायद उसका रथ जा रहा है। सुनते नहीं, आवाज सुनाई पड़ती है, घोड़ों के टापों की, रथ के पहियों की। लेकिन सब सोए हुए थे। किसी ने चिल्ला कर कहा, चुप रहो, शोर न करो, नींद न तोड़ो। कोई नहीं आता है। सपने भी कहीं सच हुए हैं? किसी ने कहा, कहां है रथ, कहां है कौन? कोई आने को नहीं है। वे सब सो गए।

वह रथ द्वार पर आकर रुका। जिसकी प्रतीक्षा थी, वह अतिथि उतरा। उसने अपने पावन चरणों से उस अंधेरे से भरे मंदिर की सीढ़ियों को पार किया; द्वार पर दस्तक दी। लेकिन पुजारी सोए हुए थे। फिर किसी को दस्तक सुनाई पड़ गई। उसने कहा कोई द्वार ठोंकता मालूम होता है। प्रतीत होता है जिसकी हम प्रतीक्षा में थे, वह आ गया। लेकिन फिर किसी सोए हुए ने चुप करा दिया और उसने कहा, चुप हो जाओ, हवा के थपेड़े होंगे। कौन जाता है, सपने कहीं सच होते हैं?

और आया हुआ अतिथि वापस लौट गया। सुबह से उठे। सुबह उस पूरे नगर ने देखा, पुजारी छातियां पीट रहे हैं। और रथ के चिन्ह सीढ़ियों पर बने थे और उन सीढ़ियों की धूल पर उस पावन अतिथि के पैरों के भी चिन्ह थे। द्वार तक वह आया था। लेकिन जिनके द्वार वह आया था, वे सोए हुए थे, इसलिए उसे लौट जाना पड़ा।

इस छोटी सी कहानी से मैं आज की बात शुरू करना चाहता हूं, इसलिए कि जीवन तो हमारे द्वार पर रोज आता है। उसके रथ के पहियों की आवाज भी सुनाई पड़ती है, उसके घोड़ों के टाप भी सुनाई पड़ते हैं, लेकिन द्वार हैं हमारे बंद और हम हैं सोए हुए। इसलिए जीते जी भी हम जीवन स्पर्शित नहीं हो पाते। जीवन रोज आता है प्रतिपल और लौट जाता है। द्वार हैं बंद हमारे, और भीतर जो है, वह सोया हुआ है। वह जागा हुआ हो तो शायद जीवन से हमारा संपर्क हो सकता है। इसलिए यह केवल दिखाई पड़ता है कि हम जीते हैं। हम

जीते भी मुर्दों की भांति हैं, जो अपने अपने कमरों में बंद हैं और सोए हुए हैं। कोई जीता नहीं है, बहुत कम लोग जीवन को उपल्ब्ध होते हैं।

उस जीवन को उपलब्ध होने का क्या मार्ग है? किस द्वार से जीवन का संगीत हमारे प्राणों में आएगा और हमें पुलकित कर देगा? उस संबंध में ही मुझे आज बात करनी है। इसके पहले कि मैं उस संबंध में कुछ कहूं, यह ठीक से समझ लेना जरूरी है कि हम किस भांति सोए हुए हैं! क्योंकि सोए हुए मनुष्य के लिए जीवन का कोई संपर्क... कोई संपर्क नहीं हो सकता है। सोए हुए के लिए कोई जीवन नहीं है। जीवन है जाग्रत चित्तता में, जागे हुए में, होश में। और हम सब सोए हुए हैं। कैसे हम सोए हुए हैं, उस संबंध में थोड़ा समझेंगे तो शायद जागने की बात भी हमारे खयाल में आए।

बहुत-बहुत रूप हैं हमारे सोए हुए होने के। शायद एकदम से आश्चर्य होगा जानकर कि मैं आपको सोया हुआ कहूं! आप सब जागे हुए हैं, आंखे खुली हुई हैं। चलतें हैं, उठते हैं, बात करते हैं। और जागने का क्या अर्थ हो सकता है? नहीं, लेकिन हमारा यह जागना और हमारी यह खुली आंखे सबूत नहीं हैं सचमुच जागने का। एक आदमी शराब पिए खड़ा हो, आंखे खुली हों, बातें भी करता होगा, फिर भी हम नहीं कह सकते कि वह जागता है। हम कहेंगे सोया है, बेहोश है, मूर्च्छित है। हम भी आंखें खोल खड़े हैं, लेकिन बहुत-बहुत प्रकार की शराब हमने पी रखी है, जो हमारी निंद्रा बन गई है। बहुत प्रकार की बेहोशियां हैं, जिनमें हम डूबे हुए हैं। आंखों की पलकें हैं, बोलते हैं, बात करते हैं, लेकिन भीतर कोई बेहोश है, कोई मूर्च्छित है। और उसके कारण यह सब जागरण, केवल दिखाई पड़ने वाला जागरण है, वस्तुतः जागरण नहीं है।

रात हम सोते हैं, सुबह हम जागते हैं तो यह भ्रम होता है, नींद टूट गई। नींद टूटती नहीं। रात आकाश में तारे होते हैं, सुबह सूरज निकल आता है तो शायद हम सोचते होंगे, तारे समाप्त हो गए। तारे समाप्त नहीं होते, केवल सूरज की रोशनी में ढंक जाते हैं। मौजूद तो वे वहीं होते हैं, जहां थे। और अगर कोई बहुत गहरे कुएं में चला जाए, अंधेरे कुएं में, तो दिन में भी उसे आकाश में तारे दिखाई पड़ जाएंगे।

रात हम सोते हैं और सपने देखते हैं। सुबह हम उठ आते हों, तो सोचते हों कि हमारे सपने गए, तो हम भूल में हैं। सपने केवल जीवन की भाग-दौड़ में छिप जाते हैं। कोई थोड़ा आंख बंद करके भीतर देखेगा तो पाएगा, सपने वहां मौजूद हैं और चल रहे हैं। वहां कोई सपना भीतर, वहां कोई कल्पना भीतर, वहां कोई विचारों का ऊहापोह चल रहा है। और उस ऊहापोह में दबे हुए हम जाग नहीं सकते। वह ऊहापोह बिल्कुल शांत हो जाए, शून्य हो जाए तो ही भीतर, जो चेतना छिपी है, वह पूरे अर्थों में प्रगट होती है और जागती है। इसलिए जब तक कोई मनुष्य सब प्रकार की बेहोशियों के द्वार न छोड़ दे, सब तरह की बेहोशियों के द्वार न तोड़ दे, तब तक जाग नहीं सकता।

थोड़ा समझें कि कैसे-कैसे हम बेहोश हैं?

कोई आदमी धन के लिए बेहोश हो सकता है, कोई आदमी यश के लिए बेहोश हो सकता है, कोई आदमी पद के नशे में मूर्च्छित हो सकता है। और बड़े आश्चर्यों का आश्चर्य यह है कि कोई त्याग में भी मूर्च्छित हो सकता है, कोई धर्म में भी मूर्च्छित हो सकता है! कोई संगीत में मूर्च्छित हो सकता है। मूर्च्छा के बहुत रूप हैं, लेकिन सूत्र एक ही है।

जहां भी आत्म-विस्मरण है, जहां भी सेल्फ-फार्गेटफुलनेस है, वहां मूर्च्छा है, वहीं बेहोशी है, वहीं निंद्रा है।

जागरण एक ही सूत्र है, जहां सेल्फ रिमेम्बरिंग है, जहां आत्म स्मृति है।

मैंने सुना है, एक नगर में बहुत वर्षों पहले एक बहुत बड़ा वीणा-वादक आया। नगर एक राजधानी थी, एक नवाब का राज्य था। उस वीणा वादक ने नवाब को कहा, बजाऊंगा वीणा, लेकिन एक ही शर्त पर कि मुझे सुनने वालों में से कोई सिर न हिलाए। और सिर कोई हिला, मैं वीणा बजाना उसी क्षण बंद कर दूंगा। यह मेरे बरदाश्त के बाहर है कि कोई सिर हिले। नवाब पागल था। अकसर नवाब पागल होते ही हैं, क्योंकि जो पागल नहीं होगा, वह नवाब बनने को कभी उत्सुक नहीं होगा। उसने कहा, घबड़ाओ मत, जो सिर हिलेगा--तुम्हें चिंता करने की बात नहीं, घबड़ाओ मत, हिलता हुआ सिर अलग ही करवा देंगे। तुम निश्चिंत होकर बजाओ और बीच में बंद करने की जरूरत नहीं है। हमारे सिपाही मौजूद रहेंगे, देखते रहेंगे, जो भी सिर हिलेगा, उसे अलग ही करवा देंगे। गांव में खबर पहुंचा दी गई, संध्या लोग संभल कर आएं। जो सिर हिलाएगा वीणा को सुनते समय, वह कटवा दिया जाएगा।

हजारों लोग आए होते वहां सुनने, आप भी गए होते, लेकिन लोग घर में रुक गए। आप भी रुक गए होते। थोड़े से लोग गए। उस दिन फिर वहां बहुत भीड़ नहीं थी उस भवन में। डेढ़ सौ लोग इकट्ठे हुए थे। बड़ी राजधानी थी, संगीत को बहुत प्रेम करने वाले थे। लेकिन जो बहुत संयमी होंगे, जो योगासन वगैरह जानते होंगे, वे वहां गए, ताकि थिर रह सकें। कहीं उनसे भूल से भी सिर हिल गया तो खतरा है।

वीणा बजी, एक घड़ी बीत गई। रात गहरी होने लगी और वैसे ही वीणा के स्वर भी गहरे होने लगे। दो घड़ियां बीत गई होंगी, तीन घड़ियां बीत गई होंगी, लोग ऐसे बैठे थे जैसे मूर्तियां हैं पत्थर की। श्वांस भी लेने में जैसे डर रहे हों। भूल से भी सिर न हिल जाएं। राजा की नंगी तलवारें लिए हुए आदमी खड़े थे। लेकिन जैसे-जैसे आधी रात होने लगी और रात की मूर्च्छा और संगीत की मूर्च्छा गहरी होने लगी, कुछ सिर हिलने शुरू हो गए।

रात पूरी हो गई, संगीत की रात पूरी हुई, बीस आदमी पकड़ लिए गए, जिन्होंने सिर हिलाया था। और राजा ने कहा संगीतज्ञ को, इनके सिर अलग करवा दूं? और उनसे पूछाः पागलों, मालूम था तुम्हें, फिर भी सिर क्यों हिलाए? वे लोग कहने लगे, जब तक हम मौजूद थे, हमने सिर नहीं हिलाए। जब हम मौजूद न रहे, तब तो हमारा कोई वश नहीं रहा। हम जब तक होश में थे, सिर हमने नहीं हिलाए, लेकिन जब बेहोशी आ गई होगी, हम भूल गए अपने को और हो गए संगीत के साथ एक, तब फिर हमारी कोई जिम्मेवारी नहीं। सिर हिला होगा, हमने नहीं हिलाया। संगीतज्ञ से पूछाः इनके सिर अलग करवा दूं? उसने कहा नहीं। किसी कारण से मैंने यह शर्त रखी थी। कल भी मैं वीणा बजाऊंगा, लेकिन ये बीस ही लोग आ सकेंगे। कोई और न आ सकेगा। ये बीस ही लोग कल आ सकेंगे। कल भी मैं वीणा बजाऊंगा। बस ये ही सुनने में समर्थ हैं।

वे लोग तो छोड़ दिए गए, लेकिन जिस बात के लिए मैंने यह घटना कहनी चाही, वह यह है कि संगीत उन्हें एक ऐसी जगह में ले गया, जहां वे मौजूद नहीं थे, जहां वे मूर्च्छित थे। जहां उनकी आत्म-स्मृति खो गई थी। जहां उन्हें अपने होने का कोई बोध न रह गया था। वे हिले थे लेकिन उन्होंने खुद अपने को नहीं हिलाया था। वे जैसे यंत्र की भांति कंपित हुए थे, जैसे हवा आई थी और पत्तों को हिला गई थी, हवा आई थी और नदी की लहरों को कंपा गई थी। ऐसे ही वे हिले थे। कुछ हुआ था, कोई हवा बही थी गीत की और उसमें वे कंप गए थे, उसमें वे परवश थे। अपने वश में नहीं थे। वे मूर्च्छित थे, सोए हुए थे। इस सोने में जरूर उन्हें बहुत कुछ मिला होगा। सोने में हमेशा कुछ सुख मिलता है।

जागरण एक पीड़ा है।

सपनों में कौन सुखी नहीं हो जाता, क्योंकि सपनों में हम अपने में बंद हो जाते हैं, नींद में, और बाहर के जगत से छूट जाते हैं। लेकिन जैसे आंख खुली है, जीवन की समस्याएं खड़ी हो जाती हैं। और इन जीवन की

समस्याओं से भागने को हम हजार-हजार रास्ते से मूर्च्छा के मार्ग खोजते हैं। कोई संगीत में खोजता होगा, कोई सेक्स में खोजता होगा कोई सौंदर्य में खोजता होगा। कोई संन्यास, कोई धन में खोज लेता है। जीवन भर धन के लिए दौड़ता रहता है स्वयं को भूल कर। कोई पद के लिए दौड़ता रहता है। कोई मोक्ष के लिए दौड़ता रहता है। खुद को भूलने की, खुद से एस्केप की, खुद से पलायन की हमने बहुत सी विधियां खोज ली हैं। और इसके लिए सोए ही रह जाते हैं, जाग नहीं पाते हैं।

शब्दों में, विचारों में, ज्ञान में भी कोई अपने को भूल सकता है। जीवन को, जीवन के प्रति आंखें बंद कर सकता है। अक्सर पंडित से अपरिचित रह जाते हैं। जीवन को छोड़ कर कहीं बंद हो जाते हैं, किन्हीं शास्त्रों में, शब्दों में थोथे और मृत, और वहीं खो जाते हैं, वहीं रुक जाते हैं।

रवींद्रनाथ एक रात एक नौका पर सवार थे। एक बहुत बड़ा ग्रंथ किसी मित्र ने भेंट किया था सौंदर्य शास्त्र पर, एस्थेटिक पर। उसे अपने बजरे में बैठ कर दीये को जला कर पढ़ते रहे आधी रात तक। सौंदर्य क्या है, इसकी ही

उसमें चर्चा और विचार था। खोते गए, खोते गए। जितना शास्त्र को पढ़ते गए, उतना ही खयाल भूलते गए कि सौंदर्य क्या है। और उलझन, शब्द और सिद्धांत, और तब ऊब कर आधी रात बंद कर दिया ग्रंथ। आंख उठा कर देखा तो हैरान रह गए। बजरे की खिड़की के बाहर सौंदर्य मौजूद था खड़ा। पूरे चांद की रात थी। आकाश से चांदनी बरस रही थी, नदी की लहरें शांत हो गई थीं, सन्नाटा और मौन था। दूर-दूर तक शब्द नीरव था। सौंदर्य वहां मौजूद था। तब उन्हों ने सिर पीट लिया अपना कि पागल हूं मैं। सौंदर्य द्वार के बाहर मौजूद है और मैं किताब में खोजता हूं, जहां केवल मुर्दा शब्द हैं, और कुछ भी नहीं है। बंद कर दी वह किताब।

मित्र को लिखा, मित्र तुम्हारी किताब वापिस लौटा देता हूं। सौंदर्य क्या है, अगर इसे ही जानना है तो सौंदर्य को ही देख लूंगा। लेकिन तुम्हारे शास्त्र में खोजना--जितनी देर तुम्हारे शास्त्र में खोजूंगा, उतनी देर सौंदर्य थपकी दे रहा है, आओ द्वार पर और मैं उससे वंचित रह जाऊंगा।

बंद कर दी थी किताब। फूंक कर बुझा दिया और हैरान हो गए थे कि दीए के बुझते ही जो चांदनी बाहर खड़ी थी, वह रंध्र-रंध्र से, द्वार-द्वार से बजरे के भीतर आ गई थी। उसका नाच भीतर आ गया था। और तब उन्होंने कहा था, एक और सत्य मुझे दिखाई पड़ा कि छोटा सा दिया जला कर मैं बैठा था, तो परमात्मा के दीए की रोशनी भीतर नहीं आ पा रही थी। मेरा दीया परमात्मा के दीये को दीवाल बना था, भीतर नहीं आने देता था। बुझा दिया है मेरा दीया तो जो द्वार पर खड़ा था, वह भीतर आ गया।

ज्ञान का हम अपना-अपना दीया जलाए बैठे हैं और चारों तरफ बरस रहा है प्रकाश उसका। और छोटे से दीए की टिमटिमाती रोशनी में वह प्रवेश नहीं कर पाता है, वह बाहर ही खड़ा रह जाता है। तो कुछ हैं, जो जोड़ने में खो देते हैं अपने को--शब्दों के ज्ञान में और शास्त्रों में। और विस्मरण कर देते हैं उसे, जो सत्य है स्वयं के भीतर भी और स्वयं के बाहर भी। कुछ हैं जो धन में खो देते हैं, कुछ हैं जो पद में खो देते हैं।

मैंने सुना है, एक धनपति मृत्यु की शैय्या पर था। जीवन भर--जीवन भर धन की दौड़ थी, धन का ही हिसाब था। कभी कुछ और सोच न पाया था, न समझ पाया था। अपनी तरफ कभी लौट कर देखने का अवसर और अवकाश नहीं मिला था। मृत्यु आ गई थी। चिकित्सकों ने कह दिया था, बचना कठिन है। शायद घर के लोग सोचते होंगे, गीता सुना दें उसे, धर्म-ग्रंथ सुना दें उसे। वे धर्म ग्रंथ और गीता सुनाते भी थे। सोचते होंगे, शायद वह सुनता भी है। लेकिन जिसने जीवन भर धन का जोड़ किया था, वह सुन भी कैसे सकेगा उसे? उसके भीतर उसका ही जोड़ चलता था, उसका ही कारोबार चलता था। ऊपर से गीता चलती थी, भीतर उसका

अपना हिसाब चलता था। वह सुनता नहीं था। सुन कैसे पाता! भीतर एक और ही मूर्छा थी। अंतिम दिन, डूबने लगा था उसका प्राण, तो उसने आंख खोली और पत्नी से पूछा कि मेरा बड़ा लड़का कहां है? उसकी पत्नी ने कहाः मौजूद है, आपके बगल में बैठा है, निश्चिंत रहे। पत्नी गदगद हो गई, जीवन में कभी उसने किसी को नहीं देखा था सिवाय पैसे के। शायद मृत्यु के इस क्षण में प्रेम उसे आ गया है, वापस लौट आया है। धन्य है यह भी भाग्य कि मृत्यु के क्षण में भी वह प्रेमपूर्ण होकर विदा हो सकेगा। उसने पूछाः और उससे छोटा लड़का? वह भी मौजूद था। और उससे छोटा? वह भी। उसकी पत्नी ने कहाः निश्चिंत रहें पांचों लड़के आपके पास मौजूद हैं। आप शांत रहें। वह आदमी जो मरणासन्न था, उठ कर बैठ गया और बोला, इसका क्या मतलब, फिर दुकान पर कौन बैठा है?

भूल में थी पत्नी, भूल में थी वह। यह प्रेम का स्मरण न था, पैसे ही का स्मरण था। भीतर उसके वही था, जो चल रहा था। मृत्यु के क्षण में भी मूर्च्छा उसकी वही थी। मृत्यु के क्षण में अपना उसे स्मरण न था। स्मरण था दुकान का। वही उसकी मूर्च्छा थी।

हम हजार-हजार रूपों में अपनी मूर्च्छा खोज ले सकते हैं। हजार-हजार रूपों में हम मूर्च्छित हो सकते हैं।

एक बहुत बड़े विचारक को लंदन के पास किसी छोटे गांव में, एक चर्च में निमंत्रण मिला था बोलने का। भूलक्कड़ था वह, जैसा विचारक होते हैं। क्योंकि विचार में इतने मूर्छित होते हैं कि स्वयं का स्मरण खो जाता है। मूर्छा भी है वह, नशा भी है वह। सात बजे संध्या उसे पहुंच जाना था उस चर्च में। यह एक घंटे का रास्ता था। अपने घोड़े पर सवार होकर एक घंटे में पहुंच सकता था। लेकिन यह सोच कर कि कोई भूल-चूक हो जाए, दो घंटे पहले निकल चलना उचित था। तो दो घंटे पहले अपने घोड़े पर चल पड़ा। पांच बजे ही घर से निकल गया। सोचा, एक घटां वहां रुक लेंगे, लेकिन समय पर पहुंच जाना उचित है। चल पड़ा घोड़े पर। चर्च के द्वार पर जाकर रुक गया, तब छः ही बजे थे। अभी सुनने आने वालों की एक घंटे की देर थी। वह घोड़े पर बैठा ही बैठा कुछ सोचने लगा। बीच में स्मरण आया अपने सिगार को जलाने का। सिगार मुंह में लगा कर वह जलाना चाहता था। हवा सामने से जोर से आती थी, उसने घोड़े को उल्टा कर लिया, सिगार जला लिया, बैठा रहा। घोड़े ने चलना वापिस शुरू कर दिया। घंटे भर बाद जब उसने घड़ी देखी। सोचा कि अब तो लोग आ गए होंगे। आंख उठा कर देखी, अपने घर वापस खड़ा था।

इस आदमी को होश में कहिएगा, इस आदमी को मूर्च्छित कहिएगा? या कि जागरूक कहिएगा? यह आदमी होश में है, जागा हुआ है?

नहीं इसका चित्त बिल्कुल ही मूर्च्छित है। अपने ही खयालों में, विचारों में खोया हुआ है। ऐसे हम सब बहुत-बहुत रूपों में मूर्च्छित हैं। इसके मूर्च्छा रहते जीवन से कोई संपर्क नहीं हो सकता। जीवन से संर्पक होने के लिए मूर्च्छा टूट जानी चाहिए। जागरण का द्वार हृदय पर खुलना चाहिए।

कैसे खुलेगा वह द्वार?

और हम द्वार को खोलने की जो भी चेष्टा करते हैं, अकसर होता यही है कि उससे द्वार और बंद हुआ चला जाता है। अकसर उससे और द्वार और बंद होता है, खुलता नहीं। हमारी चेष्टा बहुत भ्रांत है।

तीन सूत्रों पर मैं चर्चा करूंगा, जिनसे यह जीवन का द्वार खुल सके।

पहला सूत्रः-केवल वे ही लोग, केवल वे ही लोग जाग सकते हैं और आत्म स्मरण से भर सकते हैं, जो अंधी श्रद्धाओं और विश्वासों से अपने को मुक्त कर लें। जो विचार की तीव्रता में वापस हो जाएं, जो विचार के ज्वलंत प्रकाश में, विचार के आलोक में अपनी चेतना को स्थापित कर सकें, प्रतिष्ठित कर सकें। क्योंकि जो श्रद्धा

में है, वह आंख बंद कर लेता है। आंख बंद कर लेने से सो जाता है। जो विश्वास कर लेता है, वह आंख बंद कर लेता है।

विश्वास का अर्थ ही हैः मैं किसी को मान लेता हूं, खुद की खोज छोड़ देता हूं।

जिस क्षण मैं खुद की खोज छोड़ता हूं, उस क्षण निंद्रा शुरू होती है। किसी के सहारे आंख बंद करके मैं सोचता हूं। भागा जाऊं किसी के अनुगमन में, किसी के पीछे, किसी के अनुसरण के। किसी को अपने ऊपर ओढ़ कर मैं पार हो जाऊंगा, तो मैं भूल में हूं। मैं जितना ही पर-निर्भर होता चला जाऊंगा, उतनी ही मेरी निंद्रा गहरी होती जाती है, उतना ही जागरण कठिन होगा।

लेकिन हम सब हजारों वर्षों से विश्वास में जिए हैं। तर्क में हमारी दीक्षा नहीं है। विचार में सतेज, चिंतन में हमारी दीक्षा नहीं है। हमारी दीक्षा है विश्वास में, श्रद्धा में। वे सुलाने वाले तत्व हैं, वे सुलाने वाले तत्व हैं, वे मादक द्रव्य हैं। श्रद्धा सबसे बड़ा ड्रग है, सबसे बड़ी बेहोशी की दवा है, जो आदमी ने अब तक खोजी है। उससे सारी दुनिया सो गई है। कुछ लोगों का हित है इसमें कि लोग सो जाएं तो शोषण आसान है। लोग सोएं हो तो उनकी जेब खाली कर लेनी आसान है। लोग जागे हुए हों तो शोषण मुश्किल है। धर्म के नाम पर शोषण है। लोग जितने सोए हुए हों, उतना शोषण आसान है।

एक विचारक थे एक गांव में। वह सुबह-सुबह गांव के तेली के पास तेल खरीदने गया था। एक अजीब सी बात उसने देखी तो पूछ बैठा। विचारक था, सोचता था--जो भी दिखाई पड़ जाए, प्रश्न बन जाता था। देखा, तेली जो तेल बेचता है, उसके पीछे ही बैल का कोल्हू है, जो चलता है और तेल पेर रहा है, लेकिन वह बैल को चला नहीं रहा है, बैल अपने आप चले जा रहा है। उसने तेली से पूछाः यह क्या तरकीब है तुम्हारी! बैल को चलाने वाला नहीं है और बैल चला जाता है? बड़ा श्रद्धालू बैल मालूम होता है। बड़ा विश्वासी बैल है। इसको पता भी नहीं कि कोई चला रहा है। रुक जाए पागल, क्यों चल रहा है? उस तेली ने कहाः देखते नहीं हो बैल की आंखें, जो पट्टियों से बंधी हैं? बैल को अंधा कर दिया है। उसे पता नहीं चलता कि चलाने वाला कोई पीछे है या नहीं। उस विचारक ने पूछाः लेकिन कभी-कभी ठहर कर तो पता तो लगा ले सकता है कि कोई पीछे है या नहीं? उस तेली ने कहाः मैं बैल का समझदार हूं। देखते नहीं बैल के गले में घंटी बांध रखी है? चलता रहता है, घंटी बजती रहती है। मुझे पता रहता है, बैल चल रहा है। खड़ा हो जाता है, घंटी बंद हो जाती है, मैं पीछे जाकर फिर हांक देता हूं। बैल को पता नहीं चल पाता कि कोई पीछे मौजूद है। यह उसे खयाल रहता है कि कोई हमेशा मौजूद है। जब भी खड़ा होता है, तब हांक शुरू हो जाती है। विचारक ने कहाः लेकिन यह नहीं कर सकता बैल कि खड़ा होकर सिर को हिलाता रहे, ताकि घंटी बजे और तुम बैठे रह जाओ। उस तेली ने कहाः महाराजा मैं हाथ जोड़ता हूं, जरा धीरे बात करें, कहीं बैल ने सुन लिया तो मुश्किल हो जाएगी।

तेली बैल को नहीं सुनने देना चाहता। धर्म पुरोहित भी विचार की बात धार्मिकों को नहीं सुनने देना चाहता है। हजारों वर्षों से हमने बहुत-बहुत रूपों से आंखें बांध रखी हैं, ताकि कोई विचार की बात न सुन ले। हजार तरह के भय खड़े कर रखे हैं--कि विचार किया तो नर्क चले जाओगे, और विश्वास किया तो स्वर्ग। विश्वास करोगे तो नाव मिल जाएगी और संदेह करोगे तो भटक जाओगे। हजार तरह के डर हैं, प्रलोभन हैं, और आंखों पर पट्टियां हैं, और आदमी चला जा रहा है। इसीलिए तो जमीन पर मंदिर बहुत, मस्जिद बहुत, गिरिजे बहुत। रोज प्रार्थनाएं करने वाले बहुत, भगवान की मूर्तियां बहुत, शास्त्र बहुत, सब कुछ बहुत। लेकिन धर्म का कोई भी पता नहीं है। आदमी रोज अधार्मिक होता चला गया है और धर्म बढ़ते चले गए हैं। धर्म का विचार इतना है, लेकिन धर्म का जीवन? वह कहीं खोजे से भी दिखाई नहीं पड़ता। उसे कहीं भी खोजने चले जाएं,

उसका कहीं पता नहीं चलता कि धर्म कहां है। हां, धर्मस्थान खोजने हों और धर्म-तीर्थ खोजने हों तो वे बहुत हैं। धर्म-पुरोहित खोजने हों तो वे बहुत हैं। धर्म-शास्त्र खोजने हों तो बहुत हैं। लेकिन धर्ममय जीवन कहां है? इतना धर्म का व्यापार है, लेकिन धमर्मय जीवन क्यों नहीं है?

नहीं है इसलिए कि धर्म का जीवन हो सकता है, सतेज विचार होता तो।

अंधे आदमी धार्मिक नहीं हो सकते।

अंधा आदमी कुछ भी नहीं हो सकता है। अंधा आदमी किसी के हाथ का खिलौना है। धर्म के नाम पर मनुष्य के भीतर जो धर्म की प्यास है, उसका अदभुत शोषण हुआ है। इससे बड़ा और कोई शोषण नहीं। शोषण की ईजाद और तरकीब रही है, आदमी विश्वास करे।

क्यों करे आदमी विश्वास? विश्वास झूठा है, सिखाया हुआ है। संदेह मनुष्य के लिए स्वाभाविक है। जिज्ञासा मनुष्य की अपनी है, अपनी निजता है। छोटा सा बच्चा भी पूछता है, क्यों? उसके प्राण जानना चाहते हैं, क्यों? क्यों के पीछे छिपी है ज्ञान को पाने की एक आतुर प्यास। लेकिन धर्म-पुरोहित शिक्षा को सिखाता है, क्यों न सीखो! जो हम कहते हैं, उस पर विश्वास करो। क्यों, पूछना नास्तिकता है। क्यों को दबाता है और सिद्धांतों को थोपता है उस पर। ऊपर से ये सिद्धांत इकट्ठे हो जाते हैं, भीतर संदेह कचरा जाता है, छिपता चला जाता है। प्राणों के भीतर रह जाता है संदेह, और विश्वास रह जाते हैं ऊपर से। ये विश्वास बातचीत करनी हो तो काम देते हैं। जहां जीवन का सवाल उठता है, ये विश्वास व्यर्थ सिद्ध हो जाते हैं, क्योंकि प्राणों के गहरे में इनकी कोई जगह नहीं है। प्राणों के गहरे में बैठा है संदेह और ऊपर से वस्त्र है विश्वास के। तो दूसरों को दिखाने के काम आ जाता है विश्वास, लेकिन काम--अपने पैरों चलने के काम नहीं आ पाता। वहां संदेह पैदा हुआ है। जो आदमी विश्वास से जीवन की यात्रा शुरू करेगा, वह मौत पर संदेह को साथ लिए हुए समाप्त हो जाएगा। संदेह विश्वासों से समाप्त नहीं हो पाता है।

लेकिन जो व्यक्ति ठीक-ठीक संदेह से, राइट डाउट से, सम्यक संदेह से जीवन की खोज शुरू करता है, एक दिन इस खोज के परिणाम में उस असंदिग्ध प्रश्न को उपलब्ध हो जाता है, जहां कि कोई संदेह नहीं रह जाता। जहां पूरे प्राण किसी प्रकाश से आलोकित हो जाते हैं। जहां कि पूरा जीवन आपूरित हो जाता है।

संदेह से जो शुरू करता है, वह निश्चित रूप से किसी दिन निस्संदिग्ध सत्य को उपलब्ध हो जाता है। लेकिन जो विश्वास से शुरू करता है, वह कभी संदेह के पार नहीं जा पाता। इसलिए बात उलटी दिखाई पड़ेगी मेरी। मैं सच में ही कह देना चाहता हूं, जहां निस्संदेह हो जाए चेतना, जहां कोई शक न रह जाए, जहां जीवन और मेरे बीच कोई संदेह न रह जाए, हम जुड़ जाएं। लेकिन तब जाने का रास्ता संदेह ही है। उस तक जाने का रास्ता विश्वास नहीं है। क्योंकि विश्वास का अर्थ है कि मैंने उसे स्वीकार कर लिया, जिसे मैंने जाना नहीं। असत्य शुरू हो गया। धोखा शुरू हो गया। और जिसके मंदिर की बुनियाद धोखे से भरी हो, जिसके जीवन की पहली ईंट धोखे पर, असत्य पर रखी हो, उस मंदिर के शिखर में सोचते हैं आप, सत्य की पताका लहरा सकेगी? नहीं, कभी भी यह नहीं हो सकेगा।

विश्वास मनुष्य की निंद्रा को गहरा करते रहे हैं।

चाहिए विचार का जागरण, चाहिए तीव्र जिज्ञासा, चाहिए इंकवायरी, चाहिए पूछताछ, चाहिए संदेह, चाहिए शक। ताकि हम खोज सकें, ताकि जीवन एक प्रश्न बन सके। जैसे ही जीवन प्रश्न बनता है तो प्राण खोजने को उत्सुक हो जाते हैं। और हमने जीवन को बना लिया एक विश्वास। तो खोजने की सारी व्याकुलता, सारी

तड़प मौजूद है। और जो खोज नहीं रहा है, वह सो रहा है। जो खोज रहा है वह जागेगा, क्योंकि खोज बिना जाग नहीं हो सकती।

विश्वास सोए-सोए भी किए जा सकते हैं। लेकिन खोज के लिए तो जागना ही पड़ता है। तो खोज हो गहरी भीतर पैदा तो जागरण उसकी छाया की भांति आना शुरू होता है।

यह पहली बातः एक वैचारिक आंदोलन चाहिए चित्त में।

लेकिन वैचारिक आंदोलन का यह अर्थ नहीं है कि हम बहुत विचार इकट्ठे कर लें। बहुत विचार कर लेने से कोई विचारवान नहीं हो जाता। बल्कि विचारवान न होने की जो स्थिति है, उसको छिपाने के लिए लोग दूसरों के विचार इकट्ठे कर लेते हैं। विचार बहुत और बात है, विचारों का संग्रह बहुत और बात है।

विचार है चेतना की क्षमता।

और विचारों का संग्रह?

विचारों का संग्रह है कबाड़खाना।

दुनिया भर के विचारों को इकट्ठा करके कोई आदमी संग्रह तो कर ले सकता है, लेकिन इससे विचारवान नहीं हो जाता। विचार और बात है, विचार का संग्रह और बात है।

संग्रह होता है स्मृति में--बिल्कुल ही यांत्रिक, बिल्कुल ही मैकेनिकल चीज है।

अब तो हमने मशीनें ईजाद कर ली हैं और आदमी की स्मृति को बहुत दिन तक बहुत परेशान नहीं होना पड़ेगा। तो मशीनें उत्तर दे सकेंगी। अब तो मशीनें बता सकेंगी। अब आदमी की स्मृति को बहुत भार देने की जरूरत नहीं है। शायद आपको पता न हो, कोरिया के युद्ध में अमरीका ने यह निर्णय, कि चीन पर हम हमला करें या न करें--किसी सेनापति से पूछने नहीं गया, किसी युद्ध विशेषज्ञ से पूछने नहीं गया! यह तो मशीन से पूछी गई बात है, यह तो कंप्यूटर से पूछी गई बात है, यह तो यंत्र-मस्तिष्क से पूछी गई बात है कि युद्ध में जाएं हम चीन के या नहीं? और उस मशीन को सारे तथ्य सिखा दिए गए हैं कि चीन के पास कितनी ताकत है, कितने सैनिक हैं। अमरीका के पास कितनी ताकत है, कितने सैनिक हैं। उचित होगा युद्ध में उतरना कि नहीं, पूछा उस यंत्र को? यंत्र ने उत्तर दिया कि लड़ना ठीक नहीं है। और चीन पर हमला नहीं हुआ अमरीका का। यह निर्णय किया एक यंत्र ने! यंत्र के निर्णय ज्यादा सक्षम, कम भूल-चूक भरे होंगे। आदमी से भूल-चूक हो सकती है।

हमें बचपन से सिखा दिया जाता है, मेरा नाम राम है, मेरा नाम राम है। फिर मुझसे कोई पूछता है, तुम्हारा नाम? तो मैं कहता हूं, मेरा नाम राम है। इसमें कोई विचार की जरूरत पड़ती है? यांत्रिक स्मृति में भर दी गई है बात उत्तर निकल आता है। लेकिन जिस बात को न भरा गया हो यांत्रिक स्मृति में, उसका उसके पास कोई उत्तर नहीं है।

बचपन से सिखा दिया जाता है, ईश्वर है। तो हम सीख लेते हैं, ईश्वर है। रूस में पैदा हुए होते हैं और सिखा दिया जाता है, ईश्वर नहीं है। तो हम सीख लेते हैं, ईश्वर नहीं है। और आज मैं आपको पूछूं, ईश्वर है? और आप कहें "है", तो आप यह मत सोचना कि यह उत्तर विचार से आया है। यह स्मृति से आया है। आप रूस में होते, स्मृति दूसरी होती, आप दूसरा उत्तर देते। यहीं एक हिंदू है, यहीं एक मुसलमान है, यहीं एक जैन है, यहीं एक ईसाई है। पूछना आप एक प्रश्न, चार उत्तर निकलेंगे। आप यह मत सोचना कि ये विचार से आते हैं। इन चारों कि स्मृति को अलग-अलग पोषण मिला है, अलग-अलग भोजन मिला है। यह केवल स्मृति है, विचारों का संग्रह है। यह कोई ज्ञान नहीं है, ज्ञान तो कोई और ही बात है।

ज्ञान है जीवन के तथ्यों का सीधा साक्षात--स्मृति का बीच में व्यवधान न हो।

सुभाष के एक बड़े भाई थे शरतचंद्र। वे एक दिन ट्रेन में यात्रा कर रहे थे। अंधेरी रात थी, कोई सुबह के चार बजे होंगे। बाथरूम में गए, हाथ मुंह धोते थे, घड़ी निकाली थी, हाथ से वह छूट गई। संडास के रास्ते नीचे गिर गई। अंधेरी रात थी, भागती गाड़ी थी, चेन खींची। लेकिन खड़े होते-होते मील भर का फासला हो गया। कंडक्टर ने कहा, गार्ड ने कहा, बहुत मुश्किल है घड़ी का खोज लेना, अंधेरी रात है। एक मील का फासला हो गया है। कहां हम खोजेंगे? छोटी सी घड़ी है--इस जंगल में कहां उसे खोजेंगे, कै से उसे खोजेंगे? दिन भी होता तो कोई बात थी, बहुत मुश्किल है। क्षमा करें, गाड़ी चलने दें, लेकिन शरद ने कहाः नहीं, घड़ी मिल सकेगी, मैंने जलती हुई सिगरेट उसके पीछे डाल दी है। वह जल रही होगी, उसके आसपास ही फीट आधा फीट पर घड़ी होगी। जलती सिगरेट मिल जाएगी। आदमी दौड़ा दो। आदमी दौड़ाया गया, वह घड़ी मिल गई।

जलती सिगरेट को किसी गिरी हुई घड़ी के पीछे डाल देना, किसी स्मृति का काम नहीं हो सकता है, क्योंकि पहले कभी ऐसा नहीं हुआ था और न ही किसी गीता और कुरान में लिखा है कि घड़ी गिर जाए तो जलती सिगरेट पीछे डाल देना, किसी किताब में भी नहीं है। किसी धर्म की शिक्षा भी नहीं है कि ऐसा करना। और शरद के जीवन में भी यह मौका पहली दफा आया है। मौका था नया, स्मृति के पास कोई उत्तर न था। और अगर स्मृति के पास उत्तर भी होता तो देर लग जाती। स्मृति को समय लगता है उत्तर देने में--उतनी देर में दो घड़ी पीछे छूट जाती। स्मृति से नहीं आया उत्तर। एक समस्या थी सामने। चेतना ने सीधा उसे देखा। देखने से, आघात से आया उत्तर। यह उत्तर स्मृति का नहीं है। स्मृति के उत्तर को आप विचार मत समझ लेना।

इसलिए विचार की जिसे खोज करनी हो उसे क्रमशः स्मृति को मार्ग से अलग छोड़ देना होता है। अगर पूछना हो, ईश्वर है और स्मृति कोई उत्तर दे तो कहें क्षमा करो, तुम चुप रहो। तुम्हारा उत्तर उत्तर नहीं है। मत आओ मेरे बीच और मेरे प्रश्न के बीच। मुझे सीधा मेरे प्रश्न से निपट लेने दो। मैं सीधा अपने प्रश्न के साथ साक्षात्कार कर सकूं। मेरा प्रश्न और मैं सीधा जी सकूं साथ-साथ।

जो आदमी जीवन की समस्या के साथ सीधा जीना शुरू कर देता है, उस आदमी के भीतर विचार का जन्म होता है।

स्मृति के मार्ग से विचार का जन्म नहीं होगा। इसलिए पंडित बहुत विचारहीन हो जाता है। पंडित विचारहीन हो ही जाता है, उसका सारा आग्रह अपनी स्मृति के संग्रह पर होता है। वह वहां जीता है।

मैंने सुनी है बहुत बड़े एक गणितज्ञ के संबंध में एक घटना। बहुत बड़ा गणितज्ञ था। कहते हैं, उसने ही पहली दफा गणित पर बहुत बड़ी-बड़ी किताबों का संग्रह किया। वह एक दिन सुबह अपनी पत्नी और अपने बच्चों को लेकर पहाड़ी पर पिकनिक के लिए गया हुआ था। बीचे में था एक नाला, उसे पार करना था। उसकी पत्नी ने कहा बच्चों को धीरे-धीरे पार करा दें कोई बच्चा डूब न जाए। उसने कहाः ठहरो, मैं कोई साधारण आदमी हूं! इतना बड़ा गणितज्ञ हूं। अभी नदी की औसत गहराई, एवरेज गहराई नापे लेता हूं। अपने बच्चों की औसत ऊंचाई भी नापे लेता हूं। फिर देखेंगे, क्या करना है। छोटा सा नाला था, उसने जल्दी से नाप लिया। अपने बच्चों को नापा, रेत पर हिसाब लगाया। उसने कहाः बेफिक्र रहो, नदी की औसत गहराई से हमारा बच्चा औसत ऊंचा है जाने दो। वह आगे हो गया।

उसकी पत्नी पति को मान गई। पत्नियां हमेशा पतियों को मानती रही हैं। यह बहुत पुराना दुर्भाग्य है। यह कथा बहुत पुरानी है। पत्नी अकसर मान लेती है पति को।

मान गई वह इतना बड़ा गणितज्ञ है। दूसरे लोग मानते हैं। वह पीछे हो गई। एक छोटा बच्चा डुबकियां खाने लगा। नदी को गणित का कोई पता नहीं है, न ही बच्चे को। एक छोटा बच्चा डुबकियां खाने लगा। औसत

ऊंचाई और बात है। एक-एक आदमी की ऊंचाई और बात है। कहीं नदी उथली थी, कहीं गहरी थी। कोई बच्चा छोटा था, कोई बड़ा था। सबका जोड़ औसत तो आ गया था, लेकिन असली बच्चा डूबने लगा। उसकी पत्नी चिल्लाई कि छोटा बच्चा डूबता है।

जानते हैं कि विचारक ने क्या किया?

वह भागा--बच्चे को बचाने को नहीं, नदी पर उस तरफ, जहां रेत में हिसाब किया था, कि देखूं, क्या कोई गणित में भूल हो गई? उसकी दौड़ अपने विचार के तंत्र की तरफ! गणित में तो कोई भूल नहीं हो गई? भूल कैसे हो सकती है! वह बच्चा डुबकियां खाता रहा। वह नदी के किनारे अपने गणित को देखने चला गया था।

जो स्मृति पर जीता है--जब भी जीवन समस्याएं खड़ी कर देता है, तब वह दौड़ता है अपने शास्त्रों में, अपनी स्मृति में कि कहां है उत्तर? कहीं कोई भूल तो नहीं हो गई? लेकिन जीवन की समस्या को सीधा साक्षात नहीं कर पाता है। दौड़ता है नदी की रेत पर अपने हिसाब को देखने! तब तक बच्चा डूब ही जाता है। जिंदगी आगे बढ़ जाती है। नदी कोई राह देखती रहेगी कि तुम्हारा गणित ठीक है कि गलत?

जिंदगी गणित से नहीं चलती और न जिंदगी किताबों और शास्त्रों से चलती है। जिस दिन जिंदगी गणित और किताबों पर चलने लगेगी, समझ लेना, जिंदगी खत्म हो गई, उस दिन मशीनें होंगी जमीन पर, कोई आदमी नहीं। उस दिन जीवन नहीं होगा, जड़ता होगी। चेतना के रास्ते अनूठे हैं। कोई गणित, कोई सिद्धांत उसको बांध नहीं पाता। इसीलिए सब सिद्धांत पीछे पड़ जाते हैं और जीवन रोज आगे बढ़ा जाता है।

लेकिन पंडित का मन, विचार का संग्रह करने वाले का मन जुड़ा रहता है अपने शास्त्रों से। वह बार-बार जीवन के और अपने बीच में शास्त्रों को ले आता है। और तब उलझन सुलझती नहीं, और बढ़ती चली जाती है। लेकिन विचारक, विचारक यही सोचता है--यह तथाकथित विचारक, कि शायद कहीं सिद्धांत के समझने में कोई भूल हो गई है, इसलिए सब गड़बड़ हुआ जा रहा है। जिंदगी मुसीबत खड़ी करती है तो वह कहता है, गीता को समझने में भूल हो गई है। या हम गीता का ठीक से आचरण नहीं कर पाए, इसलिए सब गड़बड़ हुई जा रही है। कि बाइबिल को ठीक से नहीं समझ पाए, कि कुरान की व्याख्या में कुछ भूल हो गई, इसलिए जिंदगी गड़बड़ हुए जा रही है।

जिंदगी, साहब, इसलिए गड़बड़ नहीं हो रही है। जिंदगी इसलिए गड़बड़ हो रही है कि जिंदगी है रोज नई, किताबें हैं सब पुरानी। सिद्धांत हैं सब बीते हुए और जिंदगी रोज अनूठे, अज्ञात, अननोन रास्ते पर आ जाती है। जिंदगी पल-पल नई है और उसूल और सिद्धांत और थीम सब पुरानी। सब फिलासिफी पुरानी है। नई जिंदगी को पुराने उसूलों से जोड़ने की सारी कोशिश से गड़बड़ है। बीत गए से, अतीत से, जो जा चुका उससे; उसको जोड़ने की कोशिश, जो आ रहा है--भूल है। उसको उससे नहीं जोड़ा जा सकता। चेतना पुरानी पड़ जाती है उससे जोड़ने से। और जीवन हो जाता है नया। इसलिए चेतना का जीवन से कहीं कोई संबंध नहीं हो पाता। संपर्क होगा तब, जब नित नए होते जीवन के साथ चेतना भी नित नई हो जाए। नया हो जीवन, नई हो चेतना, तो होगा संपर्क जीवन से। पुरानी चेतना से नए जीवन का कैसे संपर्क हो सकता है?

हम सबकी चेतना पुरानी हो जाती है, विचार के संग्रह के साथ। होनी चाहिए नई। इसलिए विचार का संग्रह, विचार नहीं है। विचार को विदाई, विचार का अपरिग्रह। विचारों के संग्रह से मुक्त चेतना जीवन को सीधा-सीधा, बिना किसी को बीच में लिए देखने में समर्थ चेतना, विचार को जन्माती है।

दूसरी बातः विचार अनुमान नहीं है कि हम बैठे हैं और विचार कर रहे हैं कि ईश्वर कैसा है? कि हम बैठे हैं और विचार कर रहे हैं कि स्वर्ग के रास्ते कैसे हैं? और दुनिया कैसी है और भूगोल कैसा है? कि हम बैठे है और

विचार कर रहे हैं कि देवता ओं के पैर सीधे होते हैं कि उल्टे? कि भूत-प्रेत कैसे होते हैं? इस सबका कोई अनुमान विचार नहीं है। अनुमान बच्चों का खेल है। लेकिन बूढ़े से बूढ़े दार्शनिक भी अनुमान के खेल में लगे हैं। और ऐसे-ऐसे अजीब अनुमान इकट्ठे कर लिए हैं, जो सिवाय मनुष्य की कल्पना की उड़ानों के और कुछ भी नहीं हैं। और उन अनुमानों को इतने जोर से हमने अपने ऊपर ले लिया है कि उन अनुमानों के कारण सत्य से संपर्क होना कठिन है।

कभी-कभी कोई भूल-चूक से अनुमान, अंधेरे में फेंके गए तीर की तरह कहीं लग भी जाता हो, तो उससे कोई अर्थ नहीं है। अनुमान कभी भी सच तक नहीं ले जा सकता है, अजम्पशन कभी सत्य तक नहीं ले जा सकता। सत्य के लिए तो अनुमान और तर्क ना करने वाला मन नहीं, बल्कि कल्पना और अनुमान से मुक्त मन की जरूरत है।

मैंने एक छोटी सी घटना सुनी है। मैंने सुना है कि एक स्कूल में एक इंसपेक्टर का आगमन हुआ। उसके आने के पहले ही उसके पागल होने की खबर भी उस स्कूल में पहुंच चुकी थी। प्रतिभा की खबरें पहले ही पहुंच जाती हैं। लोगों को बहुत दिन से शक हो आया था कि उसका दिमाग खराब है। और शक हो जाने का सबसे पहला कारण तो यही था कि दूसरा कोई इंसपेक्टर कभी मुआइने को, निरीक्षण को नहीं जाता था। घर बैठ कर डायरी को भर देता था। यह पागल निरीक्षण करने को जाने लगा था। तो इंसपेक्टरों को शक हो गया था कि इसका दिमाग खराब है। फिर और घटनाएं घटीं, जिससे शक होने लगा। वह ऐसे प्रश्न पूछता था, जिनके कोई उत्तर नहीं हो सकते थे--और वह स्कूलों की रिपोर्ट खराब कर आता था।

नया स्कूल था, वहां की भी रिपोर्ट--सारा स्कूल थर्राया हुआ था। सारे स्कूल में तैयारी थी। बच्चों को अनूठे-अनूठे प्रश्नों के उत्तर सिखाए गए थे। पता नहीं, वह क्या पूछ लेगा? उसके पूछने का कोई अनुमान भी नहीं कर सकता था। आखिर वह आ गया। प्रधान अध्यापक कांपता हुआ खड़ा रहा, सब अध्यापक कांप रहे थे। जो सबसे बड़ी क्लास थी, उसमें उसे ले गए। उसने आते ही कहाः मैं एक प्रश्न पूछूंगा और अगर तुम उसका उत्तर दे सके तो फिर मैं दूसरा प्रश्न नहीं पूछूंगा। क्योंकि हंडिया का एक ही चावल देखने को काफी होता है। लेकिन अगर पहले प्रश्न का तुम उत्तर न दे सके, तो फिर आज मैं हूं और तुम हो, फिर प्रश्न मैं पूछूंगा शाम तक। और जो प्रश्न मैं पूछूंगा, वह अब तक बहुत जगह पूछा है, और कोई उत्तर नहीं दे पाया है। ऐसे बहुत सरल सा प्रश्न है।

उसने प्रश्न कर दिया। घबड़ा गए शिक्षक। उसका कोई उत्तर होना कठिन था। उसने पूछा कि एक बार दिल्ली से एक हवाई जहाज कलकत्ते की तरफ उड़ा। 200 मील प्रति घंटा उसकी रफ्तार है। क्या तुम बता सकते हो कि मेरी उम्र कितनी है? वे बच्चे भौंचक्के रह गए। अध्यापक घबड़ाए कि आ गई वही बात, जिससे बच रहे थे। क्या होगा इसका उत्तर? क्या इसका कोई उत्तर भी हो सकता है? क्या यह कोई प्रश्न है?

लेकिन इससे भी ज्यादा मुसीबत तब हो गई, जब एक बच्चे ने हाथ हिलाया कि मैं उत्तर दे सकता हूं। अध्यापक और घबड़ाए। चुप रह जाते भी तो ठीक था। यह और उत्तर देगा तो क्या होगा। प्रश्न ही मुश्किल था, उत्तर तो और मुश्किल में ले जाएगा। लेकिन उसके उत्तर से खुश हुआ। उसने कहा कि तुम पहले लड़के हो जिसने मेरे प्रश्न के उत्तर में कम से कम हाथ तो हिलाया। उठो, शाबाश! बोलो। उस लड़के ने कहाः आपकी उम्र है 44 वर्ष। इंसपेक्टर सुनकर हैरान हो गया। उसकी उम्र इतनी थी। उसने पूछा कि कैसे तुमने यह पता लगाया? क्या है तुम्हारी मैथड, क्या है तुम्हारी विधि? उस लड़के ने कहाः आपको मैं यह भी बता दूं, मेरे अतिरिक्त यह प्रश्न कोई हल नहीं कर सकता। मेरा एक बड़ा भाई है, वह आधा पागल है, उसकी उम्र बाईस वर्ष है।

इस पर हमें हंसी आती है। लेकिन हमारे बड़े-बड़े फिलासफर और दार्शनिक यही करते रहे हैं। इससे ज्यादा जरा भी उन्होंने कुछ नहीं किया। ऐसे ही अनुमान, अंधेरे में फेंके गए तीरों की सारी कथा है फिलासफी।

मध्य युग में ईसाई विचारक सोचते रहे--एक आलपिन के ऊपर कितने देवता खड़े हो सकते हैं, कितने एंजिल्स खड़े हो सकते हैं। हंसिएगा ऐसी बात पर? हंसिएगा तो बहुत बुरा मानेंगे लोग, क्योंकि वे बड़े-बड़े महात्मा लोग हैं--जो इस पर विचार कर रहे हैं कि एक आलपिन की नोंक पर कितने एंजिल्स खड़े हो सकते हैं।

लूथर जैसे समझदार आदमी ने यह लिखा है कि मक्खियां शैतान ने बनाई होंगी। क्यों? क्योंकि लूथर जब किताब पढ़ता था धर्मग्रंथ की तो मक्खियां उसकी नाक पर बैठ कर परेशान करती थीं। तो उसने लिखा है कि जरूर भगवान ने मक्खी नहीं बनाई होगी, धर्म में बाधा देती है। यह शैतान की बनाई होगी।

क्या यह अनुमान चार वर्ष के अनुमान से कुछ भिन्न है, इनमें कुछ भेद है?

और यह लंबी कथा है। सबकी बात मैं नहीं कह सकूंगा, लेकिन अगर आंख खोल कर पुरानी कथा को उठा कर देखेंगे दार्शनिकों की तो आप हैरान हो जाएंगे। यह सब क्या पागलपन है? आदमी को जिंदगी का अ ब स पता नहीं है और तुम स्वर्ग और नर्क की नाप-जोख बता रहे हो। आदमी, द्वार पर जो दरख्त लगा हुआ है, उसका उसे परिचय नहीं है कि वह क्या है? एक पति के पास पत्नी चालीस वर्ष रह गई, उसे उसकी पहचान नहीं है कि वह कौन है? और तुम ईश्वर की पहचान कर रहे हो! दूर हैं सब बातें। एक आदमी को पूरी जिंदगी रहते यह भी पता नहीं चलता कि मैं कौन हूं और तुम मोक्ष और परलोक की सर्वज्ञता में उसको दीक्षित कर रहे हो! नासमझियों का एक लंबा खेल है और एक लंबा जाल है अनुमानों का और कल्पनाओं का।

नहीं विचार का अनुमान और कल्पनाओं से कोई संबंध नहीं है। विचार की तेज धार तो सारे अनुमान और सारी कल्पनाओं को छेद कर अलग कर देती है। ताकि आंख पर से पर्दे हट जाएं और जीवन का सीधा मेल हो।

फिर विचार क्या है?

अंतिम सूत्र में मैं आपको कहना चाहूंगा, विचार का ठीक-ठीक अर्थ हैः जागरुकता, अवेयरनेस।

विचार न तो विचारों का संग्रह है। विचार न अनुमान और कल्पना है। विचार है जागरुक-चित्त। विचार है माइंडफुलनेस, विचार है होश से भरा हुआ। होश से चित्त भरे तो विचार का जन्म होता है। और जहां विचार है, वहां निंद्रा विलीन हो जाती है। वहां यह चित्त प्रबुद्ध होता है। खुलती है आंख उसके प्रति जो चारों तरफ है, और उसके प्रति भी जो भीतर है। वह दोनों कुछ अलग नहीं है कि जो बाहर है वह अलग है, और जो भीतर है वह अलग है। एक ही है--वह निंद्रा में दो मालूम पड़ता है। जागरण में एक है।

लेकिन वह जागरण, जिसको मैं कहूं विचार--वह कैसे पैदा होगा?

बैठे-बैठे माला जपने से वह पैदा होने को नहीं है। माला जपना हो, नींद न आती हो, नींद लाने की अच्छी तरकीब है। मैंने तो सुना है कि कुछ चिकित्सक जो समझदार हैं, जिन लोगों को नींद न आने की बिमारी होती है, उनको कहते हैं, मंदिरों में जाओ और धर्मकथा सुनो। मंदिरों में जब तक सोए हुए लोग दिखाई पड़ते हैं। माला जपो, राम-राम कहो, कृष्ण-कृष्ण कहो या महावीर-महावीर कहो या कोई और शब्द दोहराओ।

कोई भी शब्द की बहुत पुनरुक्ति जागरण नहीं लाती है, नींद लाती है।

एक बच्चा नहीं सोता है, उसकी मां उसे सुलाती है, कहती है राजा बेटा सो जाओ, राजा बेटा सो जाओ, राजा बेटा सो जाओ। मां सोचती है कि बहुत मजेपन से राजा बेटा सो गए, नहीं राजा बेटा बोर्डम की वजह से सो गए होंगे। राजा बेटा तो क्या, राजा बेटा के राजा बाप भी सो जाते, अगर इस बात को बार-बार दोहराया

जाए। तो ऊब पैदा होती है किसी शब्द की पुनरुक्ति से, बोर्डम पैदा होती है--ऊब, घबड़ाहट, परेशानी। अगर एक ही शब्द को कोई दोहराए चला जाए तो घबड़ाहट पैदा होगी। अगर मैं बैठ कर यहां घंटे भर तक एक ही शब्द को दोहराए चला जाऊं, या तो लोग उठ कर चले जाएंगे या लोग सो जाएंगे। और क्या करेंगे? पुनरुक्ति, रिपीटिशन तो डलनेस पैदा करता है। और डलनेस नींद लाती है।

नहीं, इस भांति कभी कोई जागा नहीं है। जागने के लिए तो कुछ और प्रयोग करना होगा। जागने के लिए तो जागने का ही सतत--सतत प्रयोग करना होगा--उठते, बैठते, चलते, सावधानी से, अवेयरनेस से। एक-एक शब्द बोलते होश से। आंख की पलक भी हिलाते होश से। पूरी तरह जानते हुए, पूरे माइंडफुल, तो ही होगा।

एक छोटी सी कहानी से शायद मेरी बात समझ में आए।

जापान में एक राजा ने अपने युवा लड़के को एक फकीर के पास भेजा। फकीर गांव में आया था, राजधानी में और फकीर ने कहा था, जीवन में एक ही बात सीखने जैसी है और वह है जागना। उस राजा ने कहा, यह जागना! हम रोज सुबह जागते हैं, वह जागना नहीं है? उस फकीर ने कहाः अगर वही जागना होता तो दुनिया सत्य को कभी का जान लेती। लेकिन सत्य का कोई पता नहीं है, यह जागरण कैसा है! यह जागना नहीं है, क्योंकि जागी हुई चेतना को फिर तत्व को जानने में कौन सा अवरोध है? राजा से कहा उसने कि, मैं जागना--एक ही सूत्र जानता हूं जीवन को सीखने का।

राजा ने अपने लड़के को कहा, जा और उस फकीर के पास रह। मैंने तो जीवन खो दिया। तू कोशिश कर कि क्या इसके पास जागना सीख सकता है? वह राजकुमार गया। उस फकीर ने कहाः सुनो, मेरी शिक्षा किताबें पढ़ने वाली नहीं है। मेरी शिक्षा बहुत अनूठी है। कल सुबह से तुम्हारा पाठ शुरू होगा। यह लकड़ी की तलवार देखते हो? कल सुबह से मैं हमला शुरू करूंगा तुम्हारे ऊपर। तुम किताब पढ़ रहे होगे, मैं पीछे से हमला शुरू कर दूंगा। बचाने की सावधानी रखना। तुम खाना खा रहे होगे, हमला हो जाएगा। तुम स्नान करने कुएं पर खड़े होगे, हमला हो जाएगा। चौबीस घंटे कहीं भी हमला हो सकता है। तो सजग रहना, सावधान रहना, बचाव करना, नहीं तो हड्डी-हड्डी टूट जाएगी। राजकुमार बहुत घबड़ाया कि यह कौन सी शिक्षा शुरू होगी!

लेकिन मजबूरी थी। पिता ने उसे भेजा था। सभी बच्चे मजबूरी में पढ़ने जाते हैं। पिता भेज देते हैं, उनको जाना पड़ता है। उसको भी जाना पड़ा था, लौट सकता नहीं था।

दूसरे दिन से शिक्षा शुरू हो गई। वह पढ़ रहा है कोई किताब, पीछे से हमला हो गया। चौंक के तिलमिला उठा। एक दिन, दो दिन, तीन दिन बीते, सब हड्डी-पसलियों पर चोट हो गई, जगह-जगह दर्द होने लगा। लेकिन साथ ही उसके खयाल में आने लगी एक नई चीज, जिसका उसे पता ही नहीं था। एक सावधानी सांस-सांस के साथ रहने लगी कि हमला होने को है। पता नहीं कब हो जाए, किस क्षण? वह हर वक्त जैसे सचेत, जैसे खयाल में, जैसे स्मृति में रहने लगा। अब खयाल आता है, जरा सी हवा चल जाए, पत्ते हिल जाएं तो वह जाग जाए। जरा सी घर में खुट-पुट हो और किसी के घर में कदम पड़ें और वह सचेत हो जाए कि हमला होने को है--बचाव करना है। सात दिन बीतते-बीतते वह बहुत हैरान हो गया। यह गुरू अदभुत था। चोट फिर हड्डियों पर नहीं हो रही थी, भीतर चेतना पर हो रही थी। वह कोई चीज नई थी, कोई चीज उठ गई थी, जो भीतर सोई हुई थी।

तीन महिने बीत गए, रोज-रोज यह चलता रहा। और रोज-रोज उस युवक ने पाया कि फर्क पड़ रहा है कोई बहुत गहरा। धीरे-धीरे वह हमले से बचाव करने लगा। हमला होता, हाथ पहुंच जाते। कोई चीज निरंतर सावधान थी, निरंतर अटेंटिव थी, हाथ पहुंच जाते, रोक लेता। तीन महिने बीत गए, हमला करना मुश्किल हो गया है। वह जो हमला करता है, वे हमले रोक लिए जाते हैं।

तीन महीने बीत जाने पर गुरु ने कहाः पहला पाठ पूरा हुआ। अब कल से दूसरा पाठ शुरू होगा। अब नींद में भी सावधान रहना। सोते में भी हमला कर सकता हूं। उस युवक ने माथा ठोंक लिया, जागने तक गनीमत थी, किसी तरह वह बचाव कर लेता था, सोने में क्या होगा? और सोते में हमले कैसे रोके जा सकेंगे?

लेकिन एक बात का उसे खयाल आ गया था। इन तीन महिनों में उसने कोई चीज बहुत अदभुत रूप से भीतर जागती हुई पाई थी, जैसे कोई बुझा दीया जल गया हो। एक बहुत सावधानी कदम-कदम पर आ गई थी, श्वास-श्वांस पर आ गई थी और एक अजीब अनुभव हुआ था उसे कि जितना वह सावधान रहने लगा था उतने ही विचार कम हो गए थे। मन मौन हो गया था। सावधानी के साथ-साथ यह जो अटेंशन उसे चौबीस घंटे देनी पड़ रही थी, उससे धीरे-धीरे विचार क्षीण हो गए थे; मन भीतर साइलेंस में, एक मौन में रहने लगा था। बड़े आनंद की खबरें भीतर से आ रही थीं, इसलिए वह तैयार हो गया कि देखें, इस दूसरे पाठ को भी देख लें।

और दूसरे दिन से दूसरा पाठ शुरू हो गया, नींद में भी हमले होने लगे। लेकिन एक महिना बीतते-बीतते नींद में भी उसे होश रहने लगा। नींद भी चलती थी, भीतर कोई तेज धारा चेतना की बहती रहती, जिससे खयाल बना रहता कि हमला हो सकता है। हैरान हुआ वह, सोया भी था, जागा भी था। आज उसने पहली दफा जाना कि शरीर सोया हुआ है, मैं जागा हुआ हूं।

एक मां सोती है रात, बच्चा बीमार होता है, रोता है, नींद में ही हाथ पहुंच जाता बच्चे पर। शायद सुबह उससे पूछो, उसे पता भी न हो कि मैंने रात बच्चे को चुप किया था। हम सारे लोग यहां सो जाएं आज, और रात में कोई आधी रात में आकर बुलाए, राम, राम तो जिसका नाम राम हो, वह पूछेगा, क्या है, लेकिन बाकी लोगों को पता ही न चलेगा कि कोई आवाज हुई। जिंदगी भर एक नाम के प्रति अटेंशन रही है, राम, वह भीतर गहरी हो चली है। कोई रात में भी बुलाता है तो वह सावधान हो जाता है आदमी, जिसका नाम राम है।

तीन महीने बीतते-बीतते नींद में भी हमला मुश्किल हो गया। नींद में भी हमला होता और हाथ रोक लिया जाता। गुरु ने कहा तेरे दो पाठ पूरे हो गए। अब तीसरा और अंतिम पाठ शुरू होने को है। उस युवक ने सोचा, अब कौन सा पाठ होगा--जागना और सोना दो बातें थीं? उसके गुरु ने कहाः अब तक लकड़ी के तलवार से हमला करता था, कल ही से असली तलवार से हमले किए जाएंगे। यह प्राण को कंपा देने वाली बात थी, लकड़ी फिर भी लकड़ी थी, चोट ही करती थी, इसमें तो प्राण भी जा सकते हैं?

लेकिन उस युवक ने देखा था, इन तीन महिनों में रात, उसके भीतर जैसे कोई स्थंभ खड़ा हो गया था जागरुकता का। विचार जैसे समाप्त हो गए। जीवन से जैसे सीधी पहुंच--जीवन से सीधा संपर्क होने लगा था। एक अदभुत आनंद और आलोक फैल रहा था। उसने सोचा, अंतिम पाठ छोड़ कर चला जाना ठीक नहीं। पता नहीं और क्या छिपा हो? वह राजी गया।

असली तलवार के हमले शुरू हो गए। हाथ में चौबीस घंटे, सोते-जागते ढाल भरी रहती थी, लेकिन पंद्रह दिन बीत गए, गुरु एक भी चोट नहीं पहुंचा पाया। हर अंधेरे कोने से इंतजाम में की गई चोट भी झेल ली गई।

बैठा था युवक एक दिन सुबह, एक अचानक खयाल उसे आया। एक झाड़ के नीचे वह बैठा है दूर, बहुत दूर। उसका गुरु दूसरे झाड़ के नीचे बैठ कर कुछ पढ़ता है। सत्तर साल का, अस्सी साल का बूढ़ा आदमी है। इतने में अचानक खयाल आया, यह बूढ़ा छह महीने से मुझे परेशान किए हुए है, सावधान! सावधान! सावधान! हर तरफ से हमला करता है। आज मैं भी इस पर हमला करके देख लूं कि यह खुद भी सावधान है या नहीं। कहीं मैं ही तो परेशान नहीं किए जा रहा हूं?

ऐसा जब उसने सोचा, उधर उसका गुरु झाड़ के नीचे से चिल्लायाः ठहर-ठहर, ऐसा मत कर देना। वह बहुत घबड़ाया, उसने कहाः मैंने कुछ किया नहीं। उसके गुरु ने कहाः तू तीसरा पाठ पूरा तो कर ले, तब मुझे पता चल जाएगा। जब चित्त पूरा सावधान होता है तो दूसरे पैर की ध्वनि ही नहीं, दूसरे के विचार की ध्वनि भी सुनाई पड़ने लगती है। थोड़ा ठहर, अंतिम पाठ पूरा कर ले।

चित्त की जागरुकता का ऐसा अर्थ है--सावधानी। जैसे हम तलवार से घिरे हुए जीते हों। और हम जी रहे हैं तलवार से घिरे हुए। मौत चारों तरफ तलवार से घेरे हुए है।

जिंदगी एक सतत असुरक्षा है, इनसिक्योरिटी है।

कोई सुरक्षा नहीं है जीवन में। इस तलवार से घिरे जी रहे हैं। भूल में हैं हम, यदि सोचते हों कि हम सब तरह से सुरक्षित हैं और कोई हमला हम पर नहीं हो रहा है। हर वक्त हमला है, पल-पल हमला है। इस हमले के प्रति बहुत सजग होकर सोचिए।

एक-एक कदम, एक-एक श्वांस, अटेंशनली, तो उसके जीवन में धीरे-धीरे सजगता का जन्म होगा। कोई सोचे--जागे। कोई कली फूल बन जाए और तब ही केवल, जो है विराट जीवन में अनंत, अमृत, उससे मिलन हो। उससे जुड़ जाना, उससे एक हो जाना।

धार्मिकता का अर्थ मेरी दृष्टि में सजगता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। न मंदिरों की पूजा और न प्रार्थना, न शास्त्रों का पठन और पाठन। यह सोया हुआ आदमी, यह सब करता रहेगा तो यह सब और सो जाने की तरकीबों से ज्यादा नहीं है। लेकिन जागा हुआ आदमी पाता है--नहीं किसी मंदिर में जाता है पूजा करने को, बल्कि वह पाता है कि जहां वह है, वहीं "वह" भी है। नहीं फिर किसी मूर्ति में देखने की, खोजने की जरूरत पड़ती है, बल्कि पाता है जो भी है और जो भी दिखाई पड़ता है, वही भगवान है। धार्मिक आदमी वह नहीं है, जो मंदिर जाता हो। धार्मिक आदमी वह है कि जहां होता है, वहीं मंदिर को पाता है। धार्मिक आदमी वह नहीं है जो प्रार्थना करता हो, धार्मिक आदमी वह है, जो पाता है कि जो भी किया जाता है, वह प्रार्थना हो गई। धार्मिक आदमी वह नहीं है कि भगवान की खोज में भटकता हो; बल्कि आंख खोले हुए वह आदमी है, जो पाता है कि जहां भी मैं जाऊं, भगवान के अतिरिक्त कोई यंत्र से तो मिलना नहीं है। लेकिन यह होगा एक जागरुक चित्त और जागरुक चित्तता ही जीवन की परिपूर्ण अनुभूति है।

मत पूछें मुझसे की जीवन क्या है और न जाएं किसी को सुनने जो समझाता हो कि जीवन क्या है? जीवन कोई किसी को नहीं समझा सकेगा। जीवन कोई समझाने की बात है? प्रेम कोई समझाने की बात है? सत्य कोई समझाने की बात है? कोई शब्दों से और विचारों से कुछ कह सकेगा उस तरफ?

नहीं, कभी कोई कुछ नहीं कह सका। जीवन तो खुद जानने की बात है। जीन पड़ेगा उस मार्ग पर, जहां से जीवन जाता है और, और वह मार्ग है जागरुकता। वह मार्ग है सचेतता का। उठते-बैठते, चलते, देखते, बात करते जिएं। देखते हुए, आंख खोले हुए, होश से भरे हुए, तो रोज-रोज कोई जागने लगेगा, कोई प्राण की ऊर्जा विकसित होने लगेगी। और एक दिन--एक दिन जो महाविराट ऊर्जा है जीवन की उससे सम्मिलन हो जाएगा। जैसे कोई सरिता बहती है पहाड़ों से और भागती चली जाती है, भागती चली जाती है। न मालूम कितने मार्गों को पार करती है, कितनी घाटियों को छलांगती है और एक दिन सागर तक पहुंच जाती है। ऐसे ही जागरूकता की धारा जो व्यक्ति जगाना शुरू कर देता है--वह सारी बाधाओं को, सारे पहाड़-पर्वतों को पार करती पहुंच जाती है, जहां प्रभु का सागर है, जहां जीवन का सागर है।

जीवन मेरे लिए परमात्मा का ही पर्यायवाची है। जीवन यानी परमात्मा। जीवन और प्रभु भिन्न नहीं है। लेकिन जो सोए हैं पुजारी अपने मंदिर में, उनके द्वार पर आएगा जीवन का रथ और वापस लौट जाएगा। जीवन तो रोज आता है द्वार पर उसके। उसके रथ की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ती है, उसके घोड़ों की टाप सुनाई पड़ती है, लेकिन नींद में लगता है कि बादल गरजते होंगे; वर्षा के बादल घिरे होंगे, बिजली तड़पती होगी। जीवन का प्रभु तो रोज जाता है द्वार पर, द्वार थपथपाता है, खोलो, लेकिन सोए हुए मनुष्य को लगता है, हवा आई होगी, द्वार खड़खड़ाती होगी।

भीतर कोई जागा हो तो इसी क्षण, और अभी, और यहीं, जीवन और प्रभु का मिलन है।

उस ओर जागने के लिए निवेदन और प्रार्थना करता हूं। उस और इशारा करता हूं। मेरी बातों को भूल जाएं, इनसे कुछ होना नहीं है। इनसे क्या संबंध है? कोई आदमी इशारा करे चांद की तरफ, हम उसकी अंगुली पकड़ लें तो भूल हो जाती है। अंगुली से क्या मतलब है?

भूल जाएं इशारे को, देखे चांद को। चांद को इशारा किया जा सकता है। लेकिन हम इशारों को पकड़ लेते हैं। कोई महावीर की अंगुली पकड़े हुए हैं, कोई बुद्ध की, कोई क्राइस्ट की। और अंगुलियों की पूजा चल रही है, प्रार्थना चल रही है। पागल हो गया है आदमी। इशारे पूजा के लिए नहीं हैं, भूल जाने के लिए हैं। देखा उसे है जिस तरफ इशारा है।

इधर थोड़ी सी ये बातें मैंने कहीं। इस इशारे को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। सबके भीतर बैठे परमात्मा को मैं प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

बिड़ला क्रीड़ा केंद्र, बंबई. दिनांक 8 सितंबर, 1969